भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियाँ - 1

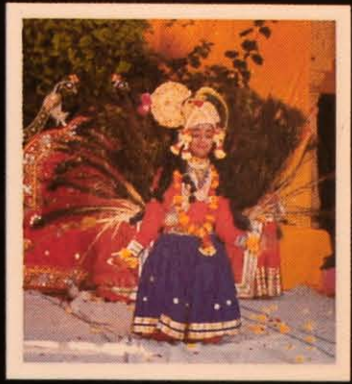

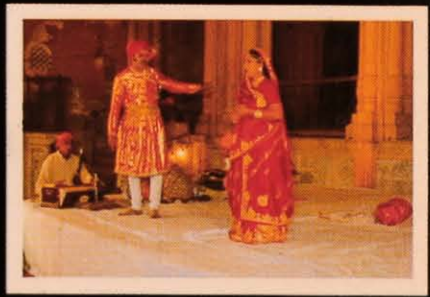

TRADITIONAL THEATRE FORMS OF INDIA - 1

भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियाँ
Traditional Theatre Forms of India
1

1. भाँड पाथर

उत्तर भारत, विशेषकर पंजाब और कश्मीर में भाँड पाथर सामाजिक स्थिति पर व्यंग्य की प्राचीन पद्धति है। भाँड शब्द का अर्थ है मसख़रा, विदूषक। कश्मीर की पारंपरिक भाँड नाट्य शैली की शब्दावली में पाथर का अर्थ एक खेल या नाटक होता है। संस्कृत के नाटकों के इतिहास में लोकमंच का विशेष उल्लेख नहीं है। इस में समवकार, व्यायोग, प्रहसन, भाण और सट्टक की चर्चा है। संभव है कि भाँड शब्द भान से उत्पन्न हुआ हो, जो कि लोक नाट्य श्रेणी में 'भाँड-भँडैती' के रूप में लोकप्रिय है। कश्मीर की भाँड पाथर परंपरा नृत्य, संगीत और नाट्य कला का अद्भुत संगम है जिसमें व्यंग्य, मज़ाक और नक़ल उतारने हेतु हँसने और हँसाने को प्राथमिकता दी जाती है। नर्तक, गायक, अभिनेता, इस परंपरा से संबंधित सभी कलाकार, भाँड ही कहलाते हैं। ऐसा माना जाता है कि सदफ भाँड, दरबारी संगीतकार के ही वंशज थे और उन्होंने ही भाँड परंपरा का विकास किया।

1. Bhand Pather

Bhand theatre based on social satire is popular in Northern India - specially in Kashmir and Punjab. The literal meaning of Bhand in Hindi is jester i.e. a professional joker. Pather means a play in the repertoire of the traditional Bhand theatre of the Kashmir. Although there is no special mention of the folk plays in Sanskrit literature, but there are few which are known as *Samvakar*, *Vyayog*, *Prahasan*, *Bhan* and *Sattak*. It is quite possible that the term *Bhand* could have been derived from Bhan, which is popular as '*Bhand-Bhandaity*'. Bhand Pather of Kashmir, is a unique combination of dance, music and drama where satire, wit and parody are preferred for inducing laughter. The group of artists – dancers, singers, actors involved in this form of theatre are called Bhands. It is believed that Sadaf Bhand was a descendent of court musician and a pioneer of the Bhand theatre.

2. भाँड पाथर

पंद्रहवीं शताब्दी में, सुल्तान ज़ैनुल आबिदीन के राज में नाटकों और नाटककारों का विशेष महत्व था। दरबार में मंच प्रदर्शन हुआ करता था। कहा जाता है कि कश्मीर के राजा अली शाह और हसन शाह ने कर्नाटक संगीत के विद्वानों को भी आमंत्रित किया। स्थिति में परिवर्तन आया और नाट्यकला दरबार में प्रस्तुत नहीं की जा सकी, लेकिन लोक कला जीवित रही। भांड दूर-दराज़ के गाँवों में भी जाते थे और अपनी कला जीवित रखते हुए समाज के सभी वर्गों का मन बहलाते थे।

भाँड, मूलरूप से किसान वर्ग के ही हैं। मई और जून के महीनों में फसल पकने के साथ ही, वे नाच-गा कर, अनाज, कपड़ा और पैसा इत्यादि पाते हैं। भाँड, देवी-देवताओं की आराधना भी अपनी कला के माध्यम से करते हैं। इन विशेष कार्यक्रमों के मंचन को भाँड जश्न कहा जाता है। देवी-देवताओं की आराधना ही नहीं, इस जश्न में व्यंग्य, मज़ाक, नक़ल उतारने का भरपूर समावेश है। जब भाँडों का कार्यक्रम शुरु हो जाता है तो नाई, झाड़ू लगाने वाला, पंडित, किसान, राजा, रसोइया, मल्लाह इत्यादि, सब की बारी आती है। भाँड कला में नक़ल उतारने का ही विशेष महत्व है। नक़ल उतार कर राजा तथा भद्रजनों का मज़ाक उड़ाना - इस कला की विशेषता है।

2. Bhand Pather

In 15th century A.D., during the reign of Sultan Zain-ul-Abidin, the theatre and performing artists were patronised and the performance was staged in Royal Courts. It is believed that the rulers of Kashmir Ali Shah and Hasan Shah also invited Carnatic musicians. With the passage of time, performances could not be staged in Royal Courts, still folk arts flourished. Bhands travelled extensively in the countryside also, entertaining and educating the masses and the classes alike, thus retaining the essence and the skills.

Bhands belong to the community of farmers. During the harvest season in May and June, they are rewarded with paddy, clothes and money for entertaining people. Gods and goddesses are reverred by Bhands through their performances. Such performances are termed as '*Bhand-Jashn*'. Apart from worship of gods and goddesses, 'the *Jashn*' is full of satire, wit and parody. Whenever the Bhands perform, they imitate one and all like barber, *safaiwallah*, priest, peasant, king, cook, boatman etc. Imitating others is the significant feature of Bhand Pather. Imitating and ridiculing the kings and elite alike is a speciality of this art form.

3. भाँड पाथर

भाँड पाथर के प्रदर्शन में पूर्व निर्धारित एवं लिखित पटकथा का प्रयोग नहीं होता है। नृत्य का आभास देने वाली मुद्राओं और हाव-भाव से कहानी आगे बढ़ाई जाती है। भाँड पाथर में पुरुषों द्वारा ही स्त्रियों का वेश प्रस्तुत किया जाता है। इस लोक कला में मूलत: नक़ल करने व रचने वाले दो कलाकार, स्त्रियों का वेश निभाने वाले दो पुरुष, दो सुरनाई (शहनाई से मिलता-जुलता सुषिर वाद्य) वादक, दो ढोल बजाने वाले और एक नगाड़ा वादक होते हैं। नाटक के विभिन्न पात्र, दर्शकों ही के बीच से गुज़र कर अपनी कला प्रस्तुत करते हैं। वेशभूषा और साज-सज्जा कश्मीरी ही होती है। शिकारगा, एक व्यंगात्मक पारंपरिक पाथर है जो कि जंगल में जाकर हिरण का शिकार करने वाले शिकारियों की कहानी पर आधारित है। जिसमें वे किसी अन्य शिकारी द्वारा आखेटित बाघ को अपना शिकार बताते हैं। इस पारंपरिक नाट्य शैली में, शिकारगा ही केवल ऐसा पाथर है जिसमें जानवरों का वेश प्रस्तुत करने के लिए मुखौटों का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत चित्र (नीचे, दाएं) में दो कलाकारों को हिरण और बाघ के मुखौटे लगाए हुए देखा जा सकता है।

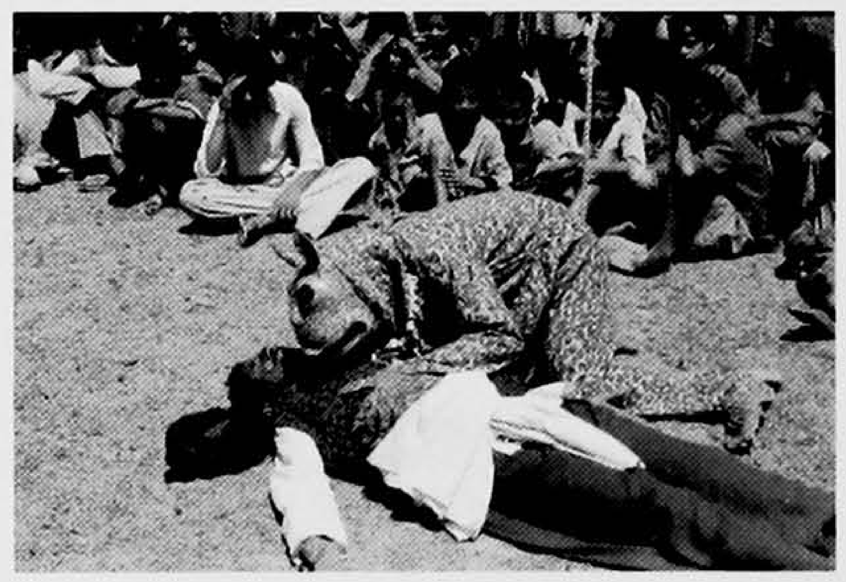

3. Bhand Pather

The performances in Bhand Pather do not follow a written script. The story progresses with the usage of dance, hand gestures and facial expressions interspersed with comical and satirical vocal passages. The repertoire consists of two actors, two male artists playing female characters two *surnai* (an aerophone - very similar to *Shehnai)* players, two drummers and one *nagara* (a type of kettle drum) player. The different actors of the play make their entry while sitting in the audience. The costumes and make-up conforms to Kashmiri traditions.

One of the traditional Pathers is *Shikaargaa* which is a satire based on the story of hunters who go to a forest for hunting deer. They claim to have killed a tiger which was killed by a genuine hunter. *Shikaargaa* is the only Pather in which masks are used to portray animal characters. In the picture, two actors with the masks of deer and tiger can be seen.

4. स्वांग

स्वांग, हरियाणा और पंजाब की पारंपरिक लोकनाट्यकला है। जहाँ तक विषयवस्तु, नाट्य शैली और रंगमंच की तकनीकी इकाइयों का सवाल है, यह उत्तर प्रदेश की लोकनाट्य शैली नौटंकी से मिलती-जुलती है। स्वांग शब्द का अर्थ है – वेशभूषा और सज्जा के आधार पर अपना रूप इस तरह बदल लेना कि असली रूप का पता ही न चले और नकली रूप भी नकली न प्रतीत हो। जीविकोपार्जन के लिये बहुरुपिये भी रूप बदल कर स्वांग ही रचते थे। स्वांग के कलाकार होली के त्यौहार पर टोलियों में घूम-फिर कर अपनी कला प्रदर्शित करते हैं तथा दशहरे के पर्व पर झाँकियां प्रस्तुत करते हैं। इनमें अक्सर मूर्तियों के समान किसी एक भाव को स्थिर बना कर सामाजिक या पौराणिक कथायें प्रस्तुत की जाती हैं।

यह परंपरागत नाट्य शैली हरियाणा में अधिक लोकप्रिय है और ऐसा माना जाता है कि वहीं इसका विकास हुआ। इस नाट्य शैली में भी नौटंकी की भाँति नगाड़े और ढोल के नाद से कार्यक्रम की घोषणा होती है। जब दर्शक इकट्ठे हो जाते हैं, तो संगीत के साथ स्वांग शुरू होता है। शहनाई, सारंगी, हारमोनियम और मंजीरे के स्वरों के साथ गायक या गायकों की आवाज़ गूँजती है। संगीतकारों की वेशभूषा दशकों से वही चली आ रही है। स्वांग में कभी तो गायन के आधार पर कथा सुनायी जाती है, तो कभी नाटक के रूप में इसका प्रस्तुतीकरण होता है। स्वांग की विषयवस्तु अधिकतर पौराणिक या ऐतिहासिक होती है।

4. Swang

Swang, is a folk-theatre form of Haryana and Punjab. It is similar to Nautanki, traditional theatre form of Uttar Pradesh. As far as thematic content, dramatic structure and theatre techniques are concerned the literal meaning of Swang is to camouflage oneself with costumes and make-up in order to impersonate the designated characters. *Bahurupias* also practised Swang to earn their livelihood. On the occasion of Holi festival, Swang artists move around in small groups displaying their art and during Dusshera festival, they are part of various tableaux. Usually social or mythological stories are presented through sculpture like images in these processions.

This traditional theatre form is more popular in Haryana and it is also believed that art form flourished more in this region. As soon as the audience gathers, the Swang performance begins with musical presentations. The solo or group singing is accompanied by *nagara, dholak, shehnai, sarangi,* harmonium and cymbal players dressed in traditional costumes. As in Nautanki, in Swang also, the *nagara* and drums are played to herald the beginning of the performance. The range of Swang performance is from the ballad singing to the dramatics based on theme of historical events.

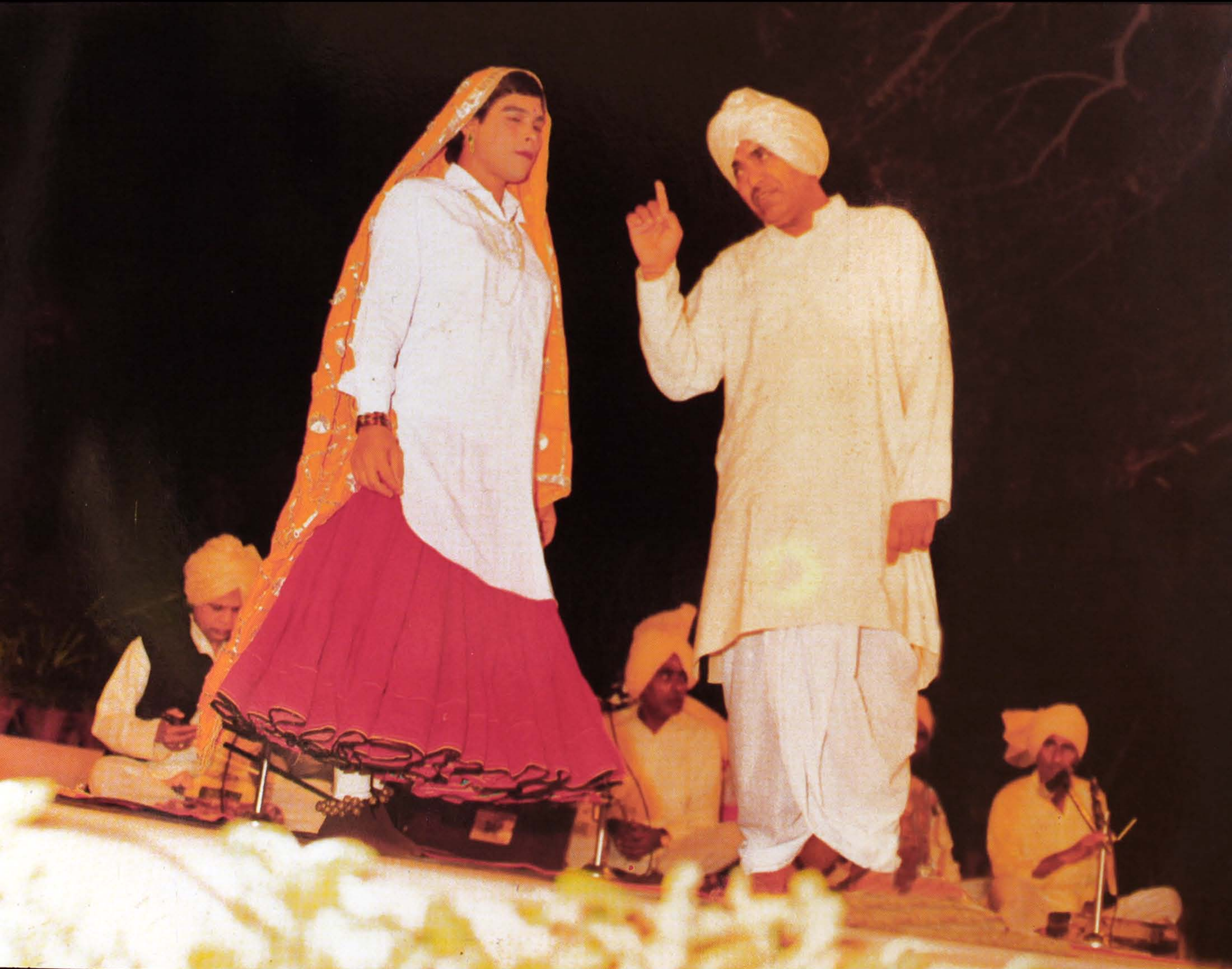

5. स्वांग

स्वांग में पौराणिक कथाओं के समावेश के बावजूद भक्तिभाव अत्यन्त अल्प मात्रा में पाया जाता है। प्राय: धार्मिक स्थलों के आसपास स्वांग की प्रस्तुति नहीं की जाती है। इस नाट्य शैली में वेशभूषा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। मुख्यत: दो पात्र ही स्वांग के विभिन्न दृश्यों में भूमिका निभाते हैं। सवाल-जवाब इन्हीं दो पात्रों में जारी रहता है। कई विशेषज्ञ मानते हैं कि स्वांग में कथानक पर ज्यादा ज़ोर नहीं दिया जाता। संवाद मुग्ध कर देने वाले होते हैं, जिनकी प्रस्तुति एवं गायन रोचक ढंग से किया जाता है।

5. Swang

The Swang theatre is a radical departure from the devotional aspects prevalent in traditional theatre forms of India. The Swang is generally not performed near the houses of worship. A special emphasis is laid on traditional costumes. Mainly two actors enact various scenes in Swang. The dialogue continues with the question-answer sessions between these two actors. Some scholars are of the view that much stress is not laid on theme in the Swang. The dialogues are captivating and presented in a lucid manner.

6. स्वांग

स्वांग हंसी और मज़ाक से भरी नाट्यकला है, जो कि अधिकतर विवाहोत्सवों में कन्यापक्ष द्वारा प्रस्तुत की जाती है। इस में स्त्रियों की भूमिका भी प्राय: पुरुष ही निभाते आये हैं, जो कि पारंपरिक लोक कलाओं के अनिवार्य अंग जैसा ही है। स्वांग में वेशभूषा ठेठ हरियाणवी तथा विषयवस्तु सामाजिक मान्यताओं पर व्यंग्य के अतिरिक्त ऐतिहासिक भी होती है। भाव, मुद्रा, संवाद, गीत इत्यादि देहाती पृष्ठभूमि से जुड़े होने के नाते स्पष्ट और सरल होते हैं।

6. Swang

Swang is a humorous and comical theatre form which is mostly presented by the bride's side during marriages. As a general convention, the female roles are also enacted by male artists, as is the practice prevalent in other performing folk art forms. The artists wear the traditional costumes of Haryana and the themes of Swang are related to historical episodes in addition to ridiculing social orthodoxy. Expressions, gestures, dialogues, songs used in Swang are simple and clear as they convey the essence of rural life.

भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियाँ
Traditional Theatre Forms of India
1

7. नौटंकी

नौटंकी, उत्तर भारत की एक प्रमुख पारंपरिक नाट्य शैली है। नौटंकी का आदि रूप 'सांगीत' के रूप में जाना जाता है। 'सांगीत' की अनेक छवियाँ रही हैं, जिनमें भगत, स्वांग तथा नौटंकी शामिल हैं। जयशंकर प्रसाद का मत है कि नौटंकी 'नाटकी' शब्द का अपभ्रंश है। डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि भरत के नाट्यशास्त्र में 'सट्टक' नाम से जिस नाट्य भेद का उल्लेख है, वह नौटंकी जैसा ही खेल था। अमृतलाल नागर का कहना है कि किसी युग में इसके प्रदर्शन का शुल्क 'नौ टक्का' रहा होगा, इसी से यह नौटंकी कहलाई। कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि नौटंकी विधा महज़ पैंसठ-सत्तर साल पुरानी है और यह नामकरण भी उतना ही पुराना है।

नौटंकी की प्रस्तुति में अधिकतर श्रृंगाररस की प्रधानता रहती है और इस तरह भगत, स्वांग, नकल से विकसित होती नौटंकी अपनी कथावस्तु में श्रृंगारिकता को समेटे रहती है। वर्तमान में, नौटंकी की प्रस्तुतियों में समकालीन घटनाओं को भी शामिल किया जाने लगा है।

नौटंकी अधिकांशतः सांगीतीय होती हैं। इसमें कव्वाली, ग़ज़ल, ठुमरी का भी असर देखा गया है। लोकशैली के दोहे, चौबोला, लावनी, माँड, नौटंकी लोकनाट्य के नाटकीय प्रसंगों, संवेदनाओं तथा संवादों को अर्थपूर्ण बनाने के उद्देश्य से अपनाए गए हैं। जाने आलम, भक्त पूरनमल, लालारुख, प्रेमकुमारी, आँखों का जादू आदि श्रृंगार-प्रधान कथानक पर आधारित प्रसिद्ध नौटंकियाँ हैं जिन पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। पंजाबी भाषा और अमीर खुसरो की भाषा का प्रभाव भी कहीं-कहीं दिख जाता है।

7. Nautanki

Nautanki is one of the most popular traditional theatre forms of North India. As the term Nautanki itself suggests, the basis of this form of entertainment is *Naatak* (play). It is believed, that the original form of Nautanki was also known as *Saangeet*, a theatre form with many facets including *Bhagat*, *Swang*, and *Nautanki*. The renowned Hindi litterateur, Jayashankar Prasad believed that the term Nautanki itself was just a local, dialectical variation of the classical term *Naataki.* Dr. Hazari Prasad Dwivedi an erudite scholar and writer maintained that India's first aesthete, Bharata, the codifier of *Natya Shastra* has given details about the theatre form *Sattak,* which was similar to Nautanki. The famous author of Hindi Amritlal Nagar, on the other hand opined, that in the times gone by, at some stage there could have been an entry fee of *nau takas,* or nine coins for the Nautanki, and hence the name. Few other scholars, suggest that Nautanki, with the same name is merely sixty-five to seventy years old.

Nautanki, as a form developed from other traditional theatre forms like *Bhagat*, *Swang*, *Nakal*, with romanticism as its driving force, has its mainstay in most of its presentations. Contemporary situations are also being included in its repertoire now a-days.

Nautanki presentations are musical influenced by *Quawwali, Ghazal* and *Thumri. Doha, Chaubola, Laavani, Maand* forms of folk music have been embedded to impart a new dimension to the scenes of suffering, sympathy, agony in Nautanki presentations. *Jaan-e-Aalam, Bhakt Puranmal, Lala Rukh, Prem Kumari, Ankhon ka jaadu* etc. are some of popular Nautanki presentations enriched with romanticism and Braj dialect. Some traces of Punjabi, and the language used by Amir Khusuro can also be seen.

8. नौटंकी

नौटंकी की कानपुर, लखनऊ और हाथरस शैली मशहूर हैं। नौटंकी कला के विकास में अनेक प्रसिद्ध लोक नाट्य कलाकारों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। नौटंकी पारसी रंगमंच से भी प्रभावित हुई। जहाँ कानपुर शैली ने पर्दों का प्रयोग, सहायक कथानक व गद्य संवाद प्रारंभ किया, उच्चारण की शुद्धता पर बल दिया एवं बहर-ए-तबील छंद का समावेश किया वहाँ लखनऊ शैली ने वेशभूषा व आधुनिक साज-सज्जा पर बल दिया। हाथरस शैली की गायन भंगिमा उल्लेखनीय है। जिन रचनाओं को अब भी प्रस्तुत किया जाता है, वे लोकशैली तथा उर्दू के प्रवाह का मिश्रण होती हैं। दोहे, चौबोला, छप्पय, बहर-ए-तबील छंदों आदि का प्रयोग इसकी विशेषता है। प्रारंभ में तो स्त्री-पात्रों की भूमिका भी पुरुष कलाकारों द्वारा ही की जाती थी, परन्तु बाद में स्त्री कलाकार भी पर्याप्त मात्रा में भाग लेने लगीं। आजकल, हरियाणा राज्य में स्थित रोहतक भी नौटंकी का विशेष केन्द्र बन गया है। सुल्ताना डाकू, वीर अभिमन्यु, राजा हरिश्चन्द्र, भरथरी, ऊदल का ब्याह, वाह री किस्मत आदि इस आँचलिक केन्द्र की प्रसिद्ध प्रस्तुतियाँ हैं।

इनके अतिरिक्त - मोरध्वज, सियाह पोश, लैला मजनू, शीरीं फरहाद, इन्दर सभा, आदि उर्दू कथाओं पर आधारित नौटंकियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं।

8. Nautanki

Nautanki presentation of Kanpur, Lucknow and Hathras are famous because of their distinctive styles. Many famous folk artists have contributed significantly for the professional development of this art form. Parsi theatre also influenced this traditional theatre form. The Kanpur style introduced the usage of curtains, sub-themes and dialogue delivery with emphasis on accent and pronounciation, enriched with the use of the meteric form of *Behar-e-tabeel.* The stylized presentations in Lucknow, on the other hand, stressed on costumes and modern make-up techniques. The unique features of Hathras style of Nautanki is the emphasis on songs and gestures. In this tradition, the language being used is still a mixture of local dialect and Urdu. Its uniqueness lies in the use of *Doha, Chaubola, Chhappai* and *Behar-e-tabeel.* In the beginning, the men used to enact female roles but later on, women too, proved their talents on the stage. The region of Rohtak in the state of Haryana has emerged as a leading centre of Nautanki. *Sultana Daku, Veer Abhimanyu, Raja Harishchandra, Bharthari, Udal ka byaah, Vaah ri kismat* are some of the famous Nautankis presented in this region.

Apart from these, the Nautankis based on Urdu literary works, like *Mordhwaj, Siyaah posh, Laila Majnu, Shirin Farhad, Inder Sabha*, etc. also form the repertory of this theatre form.

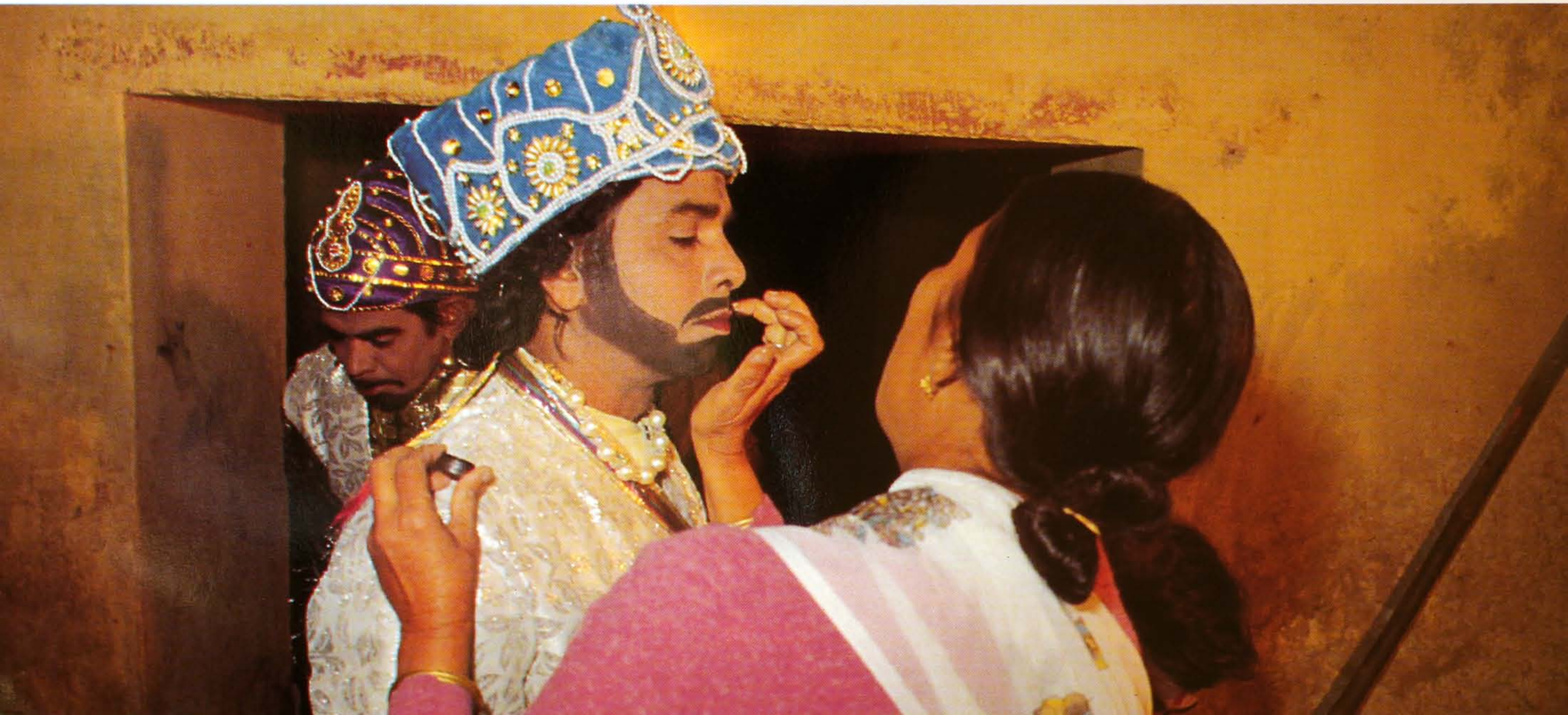

9. नौटंकी

नौटंकी के रंगमंच का स्थान थोड़ा ऊँचा बनाया जाता है। रंगमंच खुले होते हैं। पीछे की ओर आवश्यकतानुसार पर्दे लगाए जाते हैं। जिस किसी दृश्य की प्रस्तुति होती है, उसी के अनुकूल पीछे का पर्दा होता है। सबसे पहले मंच पर साजिन्दे आकर बैठते हैं। नगाड़े की ध्वनि से विशेष अनुगूँज होती है। देवी-देवताओं की स्तुति से कार्यक्रम आरंभ होता है। स्तुति प्राय: कोरस में होती है। शेर, चौबोले तथा दोहों में बातें शुरु होती हैं। सूत्रधार की विशेष भूमिका 'रंगा' द्वारा अभिनीत की जाती है। कथारंभ करने के साथ-साथ सूत्रधार रंगा अनेक नाटकीय घटनाओं को जोड़ता भी है। हालांकि गद्य और पद्य दोनों में संवाद होते हैं, फिर भी नौटंकी की पहचान पद्यमयता और सांगीतिकता से है। नक्कारे पर झूमते कलाकार लोगों के मन मोह लेते हैं। बीच-बीच में नृत्य होते रहने से मनोरंजन का पुट भरपूर होता है।

दोहा, चौबोला, दौड़, बहर-ए-तबील की धुनें - दृश्य वर्णन, संवाद और अभिव्यंजना के लिए प्रयोग की जाती हैं। गीत-अंश की समाप्ति पर टेक की धुन सारंगी, हारमोनियम और नगाड़े की ताल पर एक-दो बार बजाई जाती है - तिहाई पर उसकी समाप्ति होती है और आगे का गायन चलता है। नगाड़ा और टिकारी ही नौटंकी के मुख्य वाद्य कहे जा सकते हैं, जिनकी ध्वनि से नौटंकी की पहचान बनती है। इनकी सांगीतिक क्षमता इतनी गहरी है कि छंदों के हेर-फेर से नवरस विविध रूपों में बखूबी प्रस्तुत किए जा सकते हैं। नौटंकी की दृश्य योजना इतनी सशक्त है कि एक सिपाही को भी बिना मंच पर चढ़ाए लाखों की सेनाएँ निकाली जा सकती हैं, भयंकर से भयंकर घटना होती वर्णित की जा सकती है। दर्शकों को कुछ भी अस्वाभाविक नहीं लगता। अन्य लोकनाट्यों के समान नौटंकी में भी रूप-सज्जा यथार्थ से भिन्न होती है, किन्तु सामाजिक एवं समकालीन कथानकों में वास्तविक रूप-सज्जा अपनाई जाती है और चरित्र की आवश्यकतानुसार पगड़ी, टोपी, मुकुट, किरीट, दाढ़ी, मूँछ, विग सभी कुछ इस्तेमाल होते हैं। नौटंकी के विकास में उसके रचनाकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

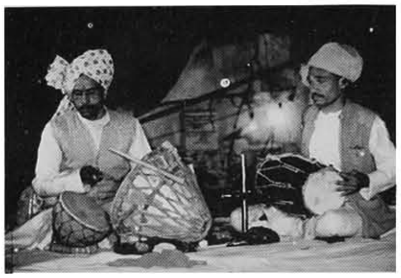

9. Nautanki

Nautanki is staged on an open, raised platform. At times, the stage has backdrops as per the requirement. The backdrop depicted is connected with the scene and accordingly the backdrop is often changed. The accompanying musicians occupy the stage first. The *nagaara* player creates the ambience of the beginning of the presentation by playing the instrument. The performance begins with an invocation in chorus and the blessings of the divine beings are sought. The dialogues composed in *Doha, Chaubola* and *Sher* herald the actual commencement of the presentation. The most important role of narrator is played by the Ranga, who begins the story to be presented. The Ranga connects the various episodes of the play. Although the dialogue is in prose as well as in verse, Nautanki is treasured because of the rhymed dialogues and their musical compositions. The actors swinging to the rhythm of the percussionists, dance sequences and the music hold the audience spellbound.

It is for the scenic description, dialogue and details of the totality, that the *Doha, Chaubola, Daur, Behar-e-tabeel* meteric compositions are used. When a song sequence is over, the basic tune is played on the *Saarangi* and the harmonium, to which rhythmic pattern is provided on the *nagaara*. The *tihai* or the third repetition, makes the end of the sequence clear and the second music composition takes off from this point. The most important instruments of Nautanki are the *nagaara* and *tikaari*. They have such a profound musical effect that nothing seems impossible to the onlooker. Navrasa in different hues and colours are presented with different permutations and combinations of musical compositions. The descriptive details seems to be so realistic as if virtual war engaging millions of soldiers is being fought without showing even a single soldier on to the stage. For that matter even most horrible incidents can be staged accordingly as if happening actually. Like in other forms of folk theatre, costume and make-up techniques are highly stylised in Nautanki also. With time, however, some changes have taken place as far as costumes and make-up techniques are concerned. These are nearer to life, to reality, to surroundings. Depending on the characters and times dealt with, headdresses are turbans, crowns, head gears with ornaments, beards, moustaches, wigs and so on. Many composers have contributed significantly in the holistic development of Nautanki.

10. रासलीला

विशेष तौर पर श्री कृष्ण की लीलाओं पर आधारित, रासलीला उत्तर प्रदेश की एक संगीतमय पारंपरिक लोकनाट्य शैली है। ईसा की पहली शताब्दी से कहीं पूर्व ही भारत में रासमंच की परंपराएँ विकसित थीं। आचार्य भरतमुनि ने लोकधर्मी रूपक की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है, रास उन से युक्त है। ब्रज के वर्तमान रासमंच पर, जहाँ नित्य रास में नृत्य और संगीत की प्रधानता है, वहाँ नित्य रास के बाद होने वाली श्री कृष्ण की ब्रजलीलाओं में नृत्य और गायन के साथ-साथ अभिनय भी महत्वपूर्ण हो उठता है। वर्तमान ब्रजरास में अभिनयतत्व के विकास का श्रेय श्री नारायण भट्ट को दिया जाता है। रासलीलाओं का श्रीगणेश गोचारण, कालियदमन, साँझी, दान और मान जैसी लीलाओं से हुआ। रास मंच पर ब्रज के वन, पर्वत, नदी, गोप, गाय, लोकजीवन का जीवंत प्रसंग अभिनीत होता है।

एक मत के अनुसार रास की उत्पत्ति अनुमानत: 'रस' से मानी गई है। कहा गया है कि रास एक वृत्ताकार नृत्य है, जिसमें 'शृंगार रस' प्रमुख है। पुराणों में रास का जो वर्णन है, उसमें शृंगार रस-निष्पत्ति के उद्दीपक तत्वों का भी उल्लेख है, जैसे - फूलों की सुगंधि, मधुर चाँदनी रात, सुहावना मौसम, आदि। किन्तु रासलीला में राधा कृष्ण की प्रणय संवेदना पूरी प्रस्तुति को एक आलौकिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर ले जाती है। रास चरम सीमा पर जा कर दर्शकों को आत्मविभोर कर देता है। मंगलाचरण, आरती, नृत्य, झाँकी तथा लीलाओं द्वारा पूरी प्रस्तुति एक नैसर्गिक भावना जगाती है।

10. Raasleela

Based exclusively on Krishna legend, Raasleela is highly musical traditional theatre form of Uttar Pradesh. The tradition of Raasleela is older than the beginning of the Christian era. Raas comprises all the characteristics of a folk art play mentioned by India's most ancient aesthete and codifier of arts, Sage Bharata. In Braj, this theatre form has developed from a narrative form, with song and dance as base, to a form which includes acting, alongwith music and dance. It is believed that this dimension to traditional Raasleela was brought in by Shri Narayan Bhatt. Down the ages, Raasleela began with the thematic episodes like *Gocharan*, *Kaliyadaman*, *Saanjhi*, *Daan* and *Maan,* etc. During the Raasleela, the lively details of the forests, mountains, rivers, cowherds, cattle, life in pastoral surroundings are enacted.

It is believed that Raas originated and developed from *ras* – an emotion or aesthetic experience. Originally, Raas was dance movements in circles, with emphasis on love, *Shringaar ras*. In the Puranas, there is a description of the Raas, which includes the depiction of scenes which are vivid. These selfless devotional love scenes lay emphasis on the fragrance of flowers, moonlit nights, pleasant weather conditions and so on. But, Raasleela itself has been inspired by the divine love of Radha and Krishna, and sentiments associated with love and separation. At its climax, Raasleela presentations uplift the audience to such an extent that they get totally immersed in the devotional love of Radha and Krishna.

Invocation, adoration, dance, and the lively depiction of Krishna's pranks evoke in the audience a feeling of natural reverence.

11. रासलीला

रास में शारीरिक अभिनय को विशेष महत्व दिया जाता है। भाव के अनुरूप नेत्र-संचालन, पग-संचालन, भंगिमा आदि का विशेष महत्त्व है। विशेष भावों को व्यक्त करने के लिए रास में विशेष हस्त एवं मुख मुद्राओं का प्रयोग होता है। ये मुद्राएँ 'चलन, हलन और चितवन' से सम्बन्धित होती हैं। मुख-मुद्राओं में सबसे अधिक महत्त्व मुस्कान का है। कृष्ण और राधा की दिव्य मुस्कान ही आकर्षण का केन्द्र होती है। शृंगाररस के अनेक भाव नयनों से नयन जोड़कर तथा कटाक्षपात द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। रास में कृष्ण की 'त्रिभंगी' मुद्रा प्रसिद्ध है, जो बाएँ पग के पंजे को दाएँ पग की भूमि पर जमे हुए पंजे के आगे तिरछा रखकर, एड़ी को ऊपर उठाकर बनायी जाती है। इस मुद्रा में कमर के साथ गरदन को थोड़ी बायीं ओर झुका दिया जाता है तथा बाएँ और दाएँ दोनों ही हाथों को तिरछा करके, दायीं ओर ऊपर उठाकर उन्हें तिरछे करके उनसे मुरली अधरों पर रखकर उसे बजाने का अभिनय किया जाता है।

11. Raasleela

In this dance form body movements and facial expressions play a very important role in expressing the emotions. There are certain postures and gestures which symbolize special, unique feelings and emotions. These gestures and postures are related to *Chalan, Halan* and *Chitvan.* In the facial expressions associated with this dance form, the smile is the most significant. The texts dealing with the legends of Radha and Krishna mention the smile again and again. The emotion of love is depicted in this dance form through the eyes. They seem to merge into one at times, and at times, they merely give an indication of love. The smile of the divine lovers are like treasures suddenly discovered. In *Raas*, it is Krishna's *Tribhangi*, or division of the body into three parts, or sections, which is important. It is the perfected art of placing the left foot, balanced on the toes, in front of the right foot, placed firmly on the ground. The left heel is raised gradually. The waist and the neck are tilted towards the left. The hands are raised to an angle, giving the impression of Radha and Krishna playing the flute.

12. रासलीला

ब्रज क्षेत्र के रासमण्डल दो तरह के होते हैं - खुले हुए रासमण्डल तथा पटे हुए रासमण्डल। खुले रासमण्डल भूमि से लगभग दो फुट से लेकर चार फुट के क़रीब ऊँचे होते हैं, जो चूने की सहायता से बनाये जाते हैं। इनका व्यास दस गज होता है। ये प्रकृति की गोद में होते हैं। रूप-सज्जा के लिए चकली पर मुर्दासिन घिसकर उसका लेपन होता है, जिससे मुखमण्डल ललछौंह दिखता है। कृष्ण के माथे पर रोली, चंदन तथा राधा व गोपियों के मस्तक पर लम्बी बिंदियाँ लगायी जाती हैं। काजल तथा तिकोने मुकुट का भी प्रयोग होता है।

रासलीला की समग्रता पर ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि संगीत और नृत्य इसके व्यापक तत्व हैं। लीलाओं में अभिनय प्रमुख है। नित्य रास में कोई संवाद नहीं होता किन्तु गायन में अभिनय-संकेतों द्वारा गीत के भावों की व्याख्या की जाती है। रासलीला में संगति के लिए प्रयुक्त प्रमुख वाद्य हैं - हारमोनियम, झाँझ, मंजीरा, तबला, पखावज, तानपुरा, करताल। रास के संगीत पक्ष में आजकल शास्त्रीय संगीत की अनेक तालों का प्रयोग किया जा रहा है। शास्त्रीय नृत्य कथक के प्रभाव के कारण दल-प्रधान, ताल के बोलों का लयबद्ध उच्चारण करता है, जो पदविन्यास द्वारा घुँघरू की ध्वनि पर दुहराए जाते हैं।

रासलीला के पदों व गीतों का सर्वव्यापी आकर्षण देखा गया है। एक ओर तो उन्हें धार्मिक भावनाओं को जगाने के लिए तथा नैतिकता के उद्देश्य से प्रयोग किया गया, तो दूसरी ओर ऋतु संबंधी त्यौहारों, अनुष्ठानों या अन्य वांछनीय अवसरों पर भी रास के पदों व गीतों का उपयोग होता है। कुछ 'रासधारी' केवल कथा-बाँचने के उद्देश्य से रास के आकर्षक पदों व गीतों को गाते रहे हैं।

वर्तमान रासलीला धार्मिक एवं पौराणिक प्रस्तुतियों में पारसी रंगमंच की छाप उसकी वेशभूषा में देखी जा सकती है। राधा और कृष्ण की एक विशिष्ट वेशभूषा होती है तथा शेष सखियों की पृथक। वादकों को भी निर्धारित वेशभूषा में आना पड़ता है।

12. Raasleela

In Braj, there are two schools of Raasleela, the open *Raasmandal* and the *pataa Raasmandal*. In the first kind, there is a stage approximately four feet above the ground, whitewashed. The area of the stage is bigger, about ten yards. It seems, that the performance is nature-oriented. Traditional colouring agents are used for the face, which seems to glow red. Krishna's forehead is decorated with *roli*, sandal paste, to give him a distinct personality, other than the *Gopas*, the cowherds, his friends. Radha and the *Gopis*, the women of Braj, who are her friends and Krishna's devotees, have bindis on their foreheads, a practice continued down the ages. Krishna also wears a triangular crown and collyrium in his eyes.

The music and dance of Raasleela, has been the mainstay of this theatre form down the ages. There is no dialogue as such. But, song and gesture give the impression of a dialogue. The instruments used for the music in Raasleela are harmonium, *jhaanjh, manjeera, tabla, pakhawaj, tanpura* and *kartaal*. When the chief singer introduces rhythmic syllables, *bols* during the narration, the ankle bells, *ghunghroos* are also jingled, to produce the effect of dance. Because of the influence of Kathak dance form, the chief singer introduces the *bols* or sound-patterns of rhythms, used mainly by percussionists otherwise, except in certain musical forms like the *Taraana*.

The lyrics and rhymes of this dance-drama are its main props. The audience has gone into raptures down the ages because of the songs of Raasleela which are full of joy, love, separation and emotions. On the one hand these songs have been sung to evoke religious feelings, faith and build ethics among the common people and on the other hand they have been sung on festive occasions while observing rituals of other appropriate events. Some of the singers of *Raas* have given preference to the more attractive couplets to make the art popular. Jayadev, Surdas, Nandadas, Paramanandadas, Lalita Kishori, etc. are some of the eminent poets who have been closely associated with this theatre form.

The influence of Parsee theatre technique on current Raasleela can be seen in the kind of costumes worn by the artists. Radha and Krishna are dressed in a way, that bears not much resemblance to the costumes of the other cowherds and maidens of Braj. Now-a-days, even the musicians of Raasleela have distinct costumes.

13. भवाई

भवाई गुजरात तथा राजस्थान की पारंपरिक नाट्य विधा है। गुजरात में यह नाट्य परंपरा विशेष रूप से कच्छ-काठियावाड़ क्षेत्र से जुड़ी कही जाती है। भवाई शब्द की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतभेद है। जहाँ विशेषज्ञ इसको भाव के वहन करने से जोड़ते हैं वहीं कुछ जानकार लोग इसका अर्थ शीतला (चेचक) से ग्रस्त लगाते हैं।

यद्यपि भवाई नवरात्र पर्व तथा अंबा देवी के मंदिरों में प्रस्तुत होता था, किन्तु बाद में भवाया समुदाय ने इसका व्यवसायीकरण किया तथा विभिन्न स्थलों पर इसकी प्रस्तुति करने लगे। माना गया है कि जयशंकर भेजक 'सुंदरी' ने इसे कलात्मक रूप दिया जबकि दीना गांधी और रसिक लाल पारिख ने भवाई में कुछ अभिनव परिवर्तन किए हैं। नए 'वेश' लिखे गए हैं। आधुनिक समय में 'मैना गुर्जरी' तथा 'जस्मा ओडण' के माध्यम से इसमें नयापन देखने को मिला तथा इसमें समकालीन प्रवृत्तियाँ भी उजागर होने लगीं।

ऐसा माना जाता है कि भवाई के जन्मदाता असिता या असाइता थे, जो गुजरात के मेहसाणा जिले के निवासी थे। राजस्थान में नागाजि को इसका प्रमुख व्यक्ति मानते हैं। दोनों कलाकार अपने-अपने समय व क्षेत्र में संगीत और नृत्य के प्रेमी थे तथा अपने सांगीतिक प्रेम के कारण इन्हें समाज में अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं। प्रारम्भ में इसका मंचन जन साधारण की भक्ति-भावना जगाने के उद्देश्य से किया जाता था। बाद में इसमें ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, रूमानी प्रकरण जुड़ने लगे। एक दूसरे से स्वतंत्र अनेक प्रसंगों को एक पूर्व नियोजित क्रम में जोड़ कर भवाई का 'वेश' तैयार किया जाता है। एक प्रसंग पंद्रह मिनट से साठ मिनट तक की अवधि का हो सकता है।

13. Bhavai

Bhavai is a traditional theatre form of Gujarat and Rajasthan. Bhavai is supposed to have deep roots in Kutch and Kathiawar in Gujarat. The term 'Bhavai' itself continues to be the cause of controversy among scholars. There are those who believe that the term refers to the firm grip of the goddess causing and controlling the dreaded small pox, while others maintain, that the term Bhavai means the flow of emotions.

Bhavai originated as a prayer offered to the Goddess Amba, during the *Navratra* festival. Later on, however, the Bhavaya sect started presenting Bhavai on other occasions as well, as a means of entertainment. The name mentioned with love and reverence for giving this theatre form artistic touches, aesthetic appeal is that of Jayashankar Bhojak 'Sundari'. Names associated with the new elements introduced in this theatre form are : Deena Gandhi and Rasik Lal Parikh.

There are also some new themes associated with this form, now. With "Maina Gurjari" and "Jasma Odan" the new elements were incorporated into this form, bringing it at par with other contemporary theatre forms.

It is believed that the creator of this form of entertainment was Asita, or Asaita, belonging to the Mehsana district of Gujarat. In Rajasthan, Nagaji has been closely associated with theatre form of Bhavai. It is said that Nagaji's love of music and dance caused him a lot of trouble.

In the beginning, this theatre form was used to rouse religious sentiments and devotional attitudes in the people. With time, this theatre form included in its framework historical, mythological, social and romantic themes. Bhavai is a presentation of several themes, unconnected with each other but put together in a planned manner. Each performance lasts from fifteen minutes to an hour.

14. भवाई

मंदिर के निकट या खुले स्थान पर भवाई आयोजन नवरात्र पर्व के अंग के रूप में किया जाता है। मंडप को खजूर के पत्तों, फूलों से सजाया जाता है। गोटे पट्टे लगाकर भी सजावट की जाती है तथा दीवारों को अलंकृत किया जाता है। चारों कोनों पर परदे खंभों पर टाँग दिये जाते हैं। गरबी, अर्थात् - मिट्टी का घड़ा या मांडवी शक्ति को समाधि के प्रतीक के रूप में रखा जाता है। संगतकार एक तरफ बैठते हैं। भवाई अभिनेता पहले गरबी को प्रणाम करता है तथा अंबा देवी से आशीष की कामना करता है।

भवाई कलाकार को 'कंचालिया' नाम दिया गया है। हास्य-कलाकार को 'रंगलो' कहते हैं। 'झूठे मियाँ', 'चटकी-मटकी', 'काजोरा मखदान', 'तेज सेठानी' भवाई के लोकप्रिय प्रहसन रहे हैं। कलाकारों के प्रवेश और प्रस्थान के साथ 'भुंगल' नामक एक तांबे का सुषिर वाद्य बजाया जाता है। तबला, ढोलक, बाँसुरी, पखावज, हारमोनियम, सारंगी, मंजीरा भवाई के अन्य वाद्य हैं। नृत्य का प्रयोग नाटकीयता का पुट देने के लिए किया जाता है। संवादों को अतिरिक्त बल देने के लिए इसे सामूहिक रूप से भी गाया जाता है, जिसमें सभी कलाकार भाग लेते हैं।

14. Bhavai

Bhavai is performed as a celebration during the nine nights of festivity, the *Navratra*, usually near a temple. Bhavai is presented in a circular arena and the audience sit all around. The pavilion for the staging of the show is decorated with leaves of the date palms, flowers with silver-lined banners at times. The walls are also decorated. The four pillars of the pavilion are draped with curtains. A *garbi*, or earthen pot or *maandvi* is placed with reverence, as a symbolic homage to the Goddess.

The musicians sit on one side. All the actors generally are males. The female roles initially were played by male actors. The actors first make their obeisance to the Goddess, Amba Devi, seeking her blessings. The Bhavai actors are known as *Kanchaalia*. Comedian is known as *Ranglo*. The favourite comedians of this theatre form are : Jhoothe Mian, Chatki-Matki, Kajora Makhdan, Tej Sethani, etc. As the actors make their entry or exit, wind instrument *Bhungal* made of copper is played. The music of this theatre draws heavily from the rich and varied folk music of the state. The instruments commonly used are *tabla, dholak,* flute, *pakhawaj,* harmonium, *sarangi* and *manjeera*. Dance sequences are introduced mainly for dramatic effect. The delivery of dialogues is often made forceful with group singing, in which the entire troupe takes part.

15. भवाई

भवाई में दोहा, चौपाई, गीत तथा गद्य के अंशों का प्रयोग किया जाता है। बीच-बीच में नायक के बोल, उसका गायन और उसकी टीका-टिप्पणी होते हैं। चरित्र के प्रवेश या विकास से सम्बद्ध नाटकीय संरचना या गायन आदि में भवाई, सामान्य पद्धति का ही अनुसरण करता है। वर्णन-पद्धति कलाओं से ली गयी हैं। गायन-शैलियाँ संगीत नाटकों से ग्रहण की गयी हैं तथा स्वच्छ गीतात्मकता साहित्यिक परंपरा के रसिकों की देन है। 'जस्मा ओडन', 'रामदेव', 'जयसिंह' आदि इसके परंपरागत कथ्य हैं। पगड़ी, ढीला-ढाला पायजामा, कमीज़ आदि इसकी पोशाकें हैं। रूप-सज्जा के लिए गुलाल, हल्दी, गेरू, कुमकुम, शंख जिरू, केसर, गोंद, चंदन तथा चावल के आटे का उपयोग होता है। दाढ़ी, मूँछ तथा केश आदि का भी चरित्र की माँग को देखते हुए इस्तेमाल किया जाता है।

15. Bhavai

The plays in the repertoire of Bhavai are like skits abounding in elements of prose and couplets. The poetic forms commonly used in Bhavai, are *Doha* and *Chaupai* including songs. Inextricable part of this theatre form is the lead actor's style of acting, his way of singing, and comments at regular intervals, during the performance itself. Bhavai has remained true to the folk traditions when it comes to the entry and introduction of the characters, the development of the theme, dramatic interludes and song sequences. Some of the plays associated with this theatre form are *Jasma Odan, Ramdev* and *Jaising.*

A *pagree,* loose pyjamas, shirt, etc are generally used as costumes. Traditional make-up material such as *gulal, haldi, geru, kumkum, shankh jiru, gond, chandan,* rice paste are used. Also depending on the roles being played the beard, moustaches and long hair form a part of the wardrobe.

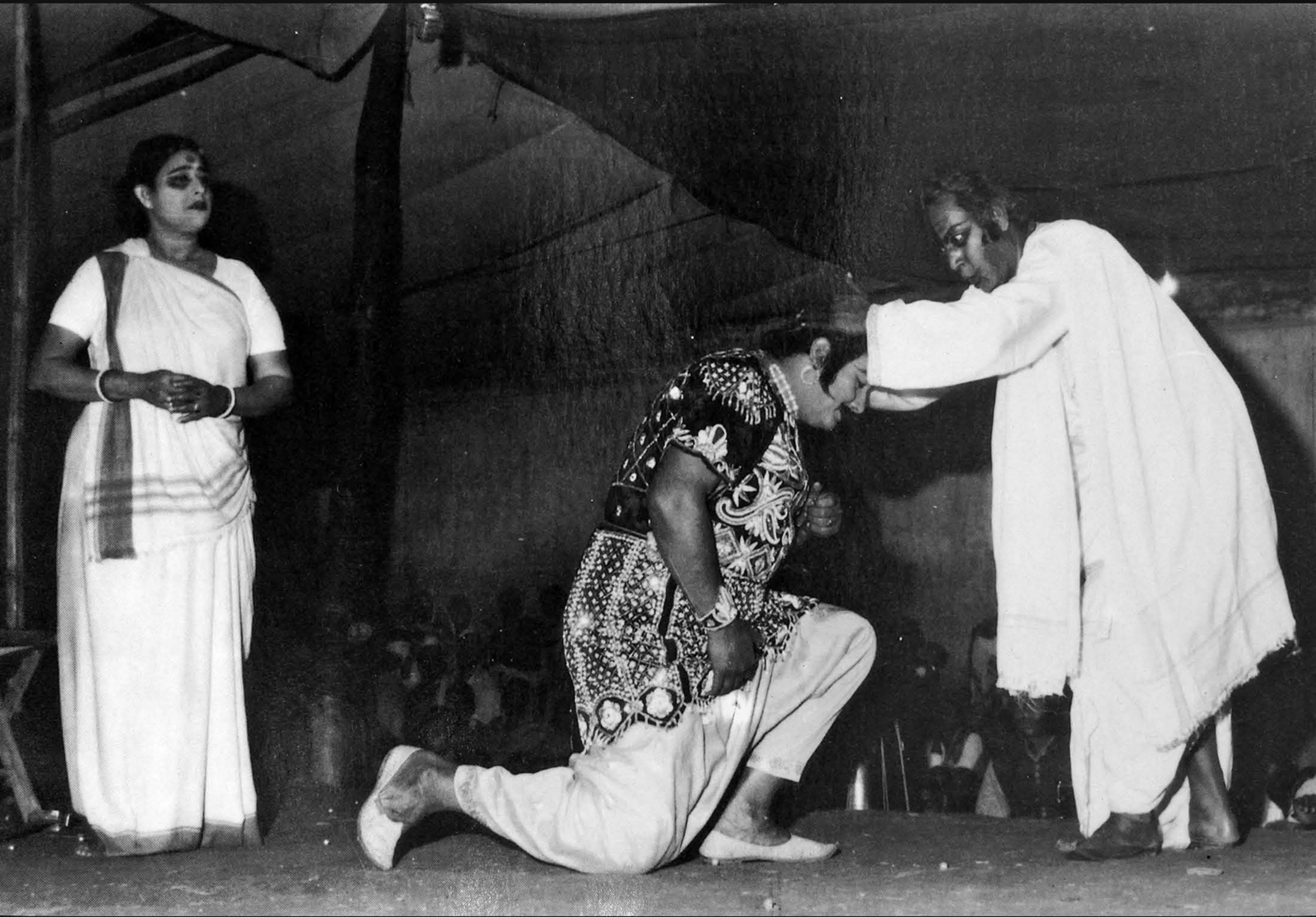

16. जात्रा

जात्रा बंगाल और ओडिशा की प्रमुख पारंपरिक नाट्यविधाओं में से एक है जो कि लगभग एक हज़ार वर्ष पुरानी है। जात्रा, संगीत प्रधान नाट्य है। पात्रों का सुरीला कण्ठ होना आवश्यक है। गायकों के सामूहिक गीत पर मृदंग वादन के साथ अभिनय किया जाता है। मंच खुली हुई ऊँची भूमि या ऊँचे चबूतरे पर बना होता है। गायक चोगा पहनकर मंच पर उतरते हैं। पौराणिक नाटकों में जैसे नन्दी पाठ होता था, उसी तरह जात्रा में गौरचंद्रिका का गायन होता है। प्रारंभिक जात्राओं में नलदमयंती जात्रा तथा विद्या सुन्दर जात्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। भक्तगण मंडलियाँ बनाकर अपने आराध्यदेव की लीलाएँ करते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया करते थे, यही यात्रा बंगाल और उड़ीसा क्षेत्र में 'जात्रा' कहलायी। इस पर कृष्ण भक्ति आंदोलन का भी प्रभाव पड़ा। बाद में पौराणिक कथाओं के साथ-साथ समकालीन विडंबनाओं तथा प्रेमकथाओं का भी समावेश होने लगा।

इस नाट्य शैली को 'जात्रा गान' की संज्ञा भी दी गई है, क्योंकि संवाद और एकालाप के अतिरिक्त कविगान इस नाट्य विधा में एक प्रमुख अंग है। कविगान के साथ-साथ पांचाली (काव्य), कथकता (व्याख्या), टप्पा, कीर्तन (खोल और करताल पर गाए जाने वाले संकीर्तन) जात्रा के अन्य अंग हैं। गायकों की मंडली (जुड़ी) के पीछे से मुख्य गायक वायलिन बजाता है तथा आवश्यक निर्देश देता है।

समय बीतने के साथ-साथ अब सामाजिक, ऐतिहासिक, समकालीन व आधुनिक विषयों को केन्द्र में रख कर जात्रा का सृजन किया जाता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जात्रा परम्परा के अंतर्गत वाल्मीकि प्रतिभा और मायार खेला नाटकों की रचना की है।

16. Jatra

Jatra is one of the most popular traditional theatre forms of Bengal and Odisha.It is believed to have come into existence about a thousand years ago. Jatra performance begins with musical presentations. It is important for the performing artists to have a sweet voice. The play is enacted along with group singing accompanied by mridanga players. The performances are staged on a high platform. The singers come to the stage wearing a loose dress known as *choga*. The compositions of *gaurchandrika* are sung in Jatra quite similar to recitation of *Nandi paath* in drama of Pauranic tradition. *Naldamyanti Jatra* and *Vidyasundar Jatra* are some of the popular Jatra presentations. Gods and Goddesses are revered by the devotees through their performances for which they travel extensively, hence the name 'Jatra'. Over the centuries, it was influenced by the Krishna cult. Gradually, faith and religious fervour has been replaced in this folk theatre form with contemporary themes of social and historical significance.

This dance form has also been referred to as *Jatra gaan*, because apart from dialogue and soliloquy, this form also includes '*kavigaan*' the recitation of poetry. Apart from this, Jatra consists of *Panchaali* (poetry), *Kathkata* (commentary) *Tappa* (light, North Indian music) *Keertan* (devotional songs to the accompaniment of *Khol* and *Kartaal*). The main singer sits behind the choir (*Juri*), plays the violin and gives directions when required.

India's poet laureate, Ravindranath Tagore produced two plays based on the form of technique of Jatra namely *Valmeeki Pratibha* and *Mayar Khela*.

17. जात्रा

जात्रा के कलाकार अधिकतर पुरुष होते हैं तथा नारी-भूमिकाएँ भी वही निभाते हैं। नारी भूमिकाएँ निभाने वाले अपने नाम के आगे रानी शब्द जोड़ लेते हैं, जिससे उन्हें पुरुष-भूमिका निभाने वालों से अलग किया जा सके। कलाकारों की वेशभूषा पर अनेक कालखण्डों का प्रभाव दिखता है। यह आवश्यक नहीं कि ये पोशाकें वास्तविक जीवन से सम्बद्ध हों। रूपसज्जा में प्राकृतिक रंग, रासायनिक रंग, काजल, सफेद सीसा, लाल रोग़न इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।

पूर्ववर्त्ती काल में ज़िंक के साथ नारियल तेल में प्राकृतिक रंगों को मिला कर रूप-सज्जा की जाती थी। अब मेकअप ट्यूब, काजल, आई ब्रो पेन्सिल, सिन्दूर, लिप्स्टिक, क्रेप का प्रयोग किया जाता है।

वेशभूषा परंपरागत और लगभग निर्धारित होती है – अधिकतर लाल, पीले, गुलाबी, नीले रंगों के वस्त्र धारण किए जाते हैं। चमड़े के कपड़े खलनायकों के लिए सुरक्षित किए गए हैं।

17. Jatra

As a general convention, Jatra has only male actors. The female roles are also enacted by male artists. The actors specializing in female roles, used to add the term 'Rani' as a prefix to their names, so as to distinguish themselves from the rest of the actors.

The costume, make up and jewellery associated with this form, have the stamp of the different cultural phases and influences. The costumes do not necessarily conform to real life.

Earlier, natural colouring agents, materials, etc., were used, like *kajal*, white lead and red powder. Now, modern techniques and appliances are used. These include, the eyebrow pencil, lipstick and so on. The artists wear traditional costumes. The preferred colours continue to be red, yellow, pink and blue. Down the ages, the villains of Jatra have worn only leather costumes. The practice continues.

भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियाँ
Traditional Theatre Forms of India
1

18. जात्रा

जात्रा में नृत्य नाटक या ऑपेरा की अपेक्षा नाटक अधिक है। समय के साथ-साथ इसके स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। आज जात्रा का संगठनात्मक ढाँचा व्यापारिक हो चुका है। इसमें सूत्रधार जैसा कोई चरित्र अब देखने को नहीं मिलता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में माथुरशाह ने इसमें 'विवेक' का चरित्र जोड़ दिया था। विवेक का चरित्र नाटक को आगे बढ़ाने, अनिष्ट की पूर्व-सूचना देने तथा अधम चरित्रों को उनकी करनी के प्रति आगाह करने का धर्म निभाता है। आज समकालीन विषयों पर भी जात्रा नाटक होते हैं। इस पारंपरिक नाट्य विधा ने हर वर्ग तथा व्यवसाय के लोगों को आकृष्ट किया है। श्याम कल्याण, विहाग, पूरबी आदि रागों पर आधारित गीत एवं धुनों के माध्यम से जात्रा ने अपनी परंपरागत छवि बनाये रखी है।

जात्रा में सांकेतिक संगीत पूर्व निर्धारित होता है - पूर्व रंग, युद्ध के दृश्य, लम्बे संवाद, प्रणय, निर्वहण, आदि सभी अवसरों पर संगीत निश्चित रहता है। तबला, ढोल, शहनाई, क्लेरेनेट, वायलिन, करताल, बाँसुरी और गिटार प्रयुक्त होने वाले प्रमुख वाद्य हैं।

18. Jatra

Jatra is a play more than dance-drama or opera. Naturally, the form has changed with the times. Jatra has also turned commercial, in the sense, that it has to compete with other forms of entertainment. Today, the Jatra does not have the Sutradhar or the narrator to keep the different scenes and themes within the framework.

It was in the beginning of the twentieth century, that Mathur Shah introduced the character, Vivek in Jatra. This character, a combination of the clown and the narrator, moves the play forward, gives warning of the calamities to come and makes the villain aware of his misdeeds. Because Jatra depicts life in all its dimensions, its ups and downs, and is based on contemporary themes, this form has attracted an audience from all classes engaged in diverse occupations.

Jatra music is usually based on the *ragas Shyam Kalyan, Behag* and *Purvi*. The music is scene-bound, so to say. War scenes, long dialogues, love and affection, denoument, etc. are invariably portrayed with music. The musical instruments used, are *tabla,* drum, *shehnai,* clarinet, violin, *kartaal,* flute and guitar.

भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियाँ
Traditional Theatre Forms of India
1

19. माच

माच, मध्य प्रदेश के मालवा और उसके आस-पास के क्षेत्रों में एक अत्यन्त लोकप्रिय नाट्यशैली है। संगीत का जहाँ तक प्रश्न है, यह राजस्थान की ख़्याल शैली और उत्तर प्रदेश की नौटंकी से कुछ समानता रखता है। माच की अपनी छाप और पहचान कविता और छंद से भी बनती है। मालवा में प्रचलित माच के पहले प्रवर्तक बालमुकुन्द गुरु माने जाते हैं जो उज्जैन के रहने वाले थे, इन्होंने माच के सोलह खेल लिखे हैं, उनमें वह खुद मुख्य पात्र का अभिनय भी करते थे। इन सोलह रचनाओं की मूल प्रतियां गुरुजी के सगे सम्बन्धियों के पास आज भी सुरक्षित हैं।

माच की उत्पत्ति 'मंच' शब्द से हुई मानी जाती है। माच, अर्थात् मंच जो अक्सर किसी खुली जगह में तैयार किया जाता है। माच शुरु करने से एक सप्ताह पहले किसी खुली जगह में 'माच' का खम्ब यानी खम्बा गाढ़ा जाता है। उसके आसपास माच-मंडली के कलाकार इकट्ठे होते हैं और अपने गुरु के हाथों से खम्ब की पूजा करवाते हैं। मंच खम्बों पर पाँच फुट से लेकर दस फुट तक ऊँचा बनाया जाता है ऊपर बल्लियों के सहारे सफेद चादर तान दी जाती है और उसमें रंग-बिरंगे कागजों के फूल गोंद से चिपकाए जाते हैं। माच मंच में रंगशाला का कोई स्थान नहीं होता। सभी पात्र मंच के पास ही अपने वस्त्रादि बदल कर आते हैं। सुविधा की दृष्टि से दर्शकों को मंच के तीन ओर ही बैठने दिया जाता है। मंच पर तीन ओर से नाटक का प्रस्तुतीकरण होता है।

प्रारंभिक अवस्था में मंच के चारों ओर खंभे खड़े किये जाते थे, जिन्हें छतरी से ढाँप दिया जाता है। अब अन्य मंचों की भाँति इसके भी पीछे पर्दा होता है।

19. Maach

Maach is an extremely popular theatre form of the Malwa region of Madhya Pradesh. It bears resemblance to Khyal of Rajasthan and Nautanki of Uttar Pradesh in music but differs textually and metrically. Maach is identified by its typical style of prose and poetry. Guru Balmukund ji of Ujjain is known as the progenitor of Maach. He composed sixteen plays in which he also played the lead role. The copies of these plays is still in the custody of his close relatives.

Maach, meaning arena, is derived from *Manch*, a raised platform, which is usually built in an open space. One week before the performance starts, a pole for the performance of Maach is fixed in the ground. The artists get together around that place and their Guru performs the religious rites. The stage is built on the poles, 5' to 10' high from the ground and on the stage a curtain is put on its rear side decorated with colourful flowers made of paper. There is no green room in the Maach theatre. The artists change their clothes near the place adjoining to the stage. The audience sits on the three sides of the stage as the Maach is performed from all these sides.

Initially the poles used to be erected on all sides of stage (Manch) which was covered by a canopy, nowadays there is a curtain fixed on the rear like in any other performance.

20. माच

माच लोक नाट्य शैली में मंच-सज्जा की अपनी ही विशेषता है। राजमहल के वैभव को दर्शाने के लिए दो ऊँचे ढाँचे होते हैं, जिनके बीच में, नीचे की ओर मंच बना होता है। मंच के एक ओर बड़ा घड़ा होता है और दूसरी ओर पहरेदार के लिए विशेष स्थान। एक झरोखा होता है, जहाँ बादशाह, पहरेदार और लगभग सोलह अन्य पात्र होते हैं। बादशाह के लिये ही बैठने की व्यवस्था की जाती है। और संभवत: राजमहल की शान-ओ-शौकत को दर्शाने ही के लिये यह परंपरा विकसित हुई होगी। यह सब नाटक को प्रभावशाली बनाने के लिए किया जाता है। प्रारम्भिक समय में इसमें पौराणिक कथाओं का मंचन होता था परन्तु बाद में, इसी परिसीमा में कथावस्तु की दृष्टि से उपलब्ध मान्य साहित्य में प्रेम कथानक, ऐतिहासिक और लोक कथात्मक विषयों का भी समावेश हुआ।

माच नाट्य शैली के तीन महत्वपूर्ण पात्र : चोबदार (गदाधारी, जिसकी भूमिका सूत्रधार की है), भिश्ती (जो नाट्यारंभ के पहले मंच पर पानी छिड़कता है) और फर्राश (जो मंच पर कालीन बिछाता है) हैं, जिनके बिना मंचन असंभव है। अन्य परंपरागत नाट्यशैलियों की भांति माच में भी विदूषक की अपनी भूमिका तथा अपना ही महत्व है। माच के कलाकार विनम्र होते हैं व दर्शकों से परिचित होते हैं।

20. Maach

In the Maach theatre form, the setting of stage occupies an important place. Elaborate arrangement of set is done with two tall structures representing palaces with a lower platform in between. A big pitcher on one side and a prisoner-post on the other can be seen. To seat the king, the guards and about 16 others, there is a projected balcony. There is a place to sit only for the king. All this was to create an imposing atmosphere for the play. Apart from mythological stories and Pauranic characters – which have universal appeal, heroic play intertwined with the drama based on theme of social orthodoxy and historical events are also performed and appreciated.

Three main characters are present in all the performances of Maach theatre. They are *Choubdar* (the mace-bearer) who acts like Sutradhar, *Bhishti* (who carries a large leather bag to sprinkle water before the performance) and *Farash* (who rolls the carpet on the stage). In addition, there is a clown. The Maach actor is not a glorious figure. The performers in the Maach theatre are modest, humble and are familiar to the audience.

21. माच

माच के संगीत में ढोलक मुख्य वाद्य है। सारंगी उसकी साथिन है। ढोलक और सारंगी के साथ-साथ नगाड़े का नाद भी गूँजता है। गति को बनाये रखने या गति को बढ़ाने के लिए ताल का विशेष महत्व है। छंदबद्ध संवाद में लय को बनाये रखने के लिये, तालवाद्य का विशेष महत्व है। इस नाट्य शैली में नृत्य की विशेष भूमिका है। ढोलक की थाप और सारंगी की मीड़ो (संवाद) की लयकारी दर्शकों में झूम पैदा करती है और दर्शकगण बोल के कौशल पर 'कई की है' (क्या कही है) कहकर झूम उठते हैं।

साज-सज्जा भड़कीली होती है। वेशभूषा में गोटे का काम खूब होता है। अब इस नाट्यशैली में सामाजिक वस्तुस्थितियों की भूमिका है, इसीलिए साज-सज्जा और वेशभूषा में सामान्य जीवन की झलक भी मिलती है।

21. Maach

Dholak is the primary musical instrument used in the Maach theatre form. The *sarangi* and *dholak* with the accompaniment of *nagara* are played during the performance. To keep the tempo of the plays upbeat the rhythm is a very important component particularly in verses and songs. Dance too has an important role in Maach.

Make up is usually loud with costumes comprising shining clothes with pattern and lot of brocade work. As contemporary issues are adopted in Maach theatre nowadays, make-up and costumes are taken from daily life.

22. अंकिआ-नाट और भाओना

अंकिआ-नाट असम की पारंपरिक नाट्यशैली है। इसके प्रस्तुतीकरण को 'भाओना' कहा जाता है, जिसका मूल 'भाओलोआ' है एवं इसका अर्थ होता है - 'भावों को अभिनय द्वारा प्रकट करना'। असम में कतिपय सत्रों (मठों) में अंकिआ-नाट की प्रस्तुति की परंपरा कायम है। इसका स्रोत शंकरदेव का व्यक्तित्व रहा है। इस नाट्यशैली में असम के अलावा बंगाल, उड़ीसा तथा वृंदावन-मथुरा इत्यादि की सांस्कृतिक झलक मिल जाती है। इस शैली के नाटकों की भाषा को ब्रज बोली कहते हैं, जिसमें अनेक भाषाओं का मिश्रण था तथा जिसका प्रयोग थोड़े बहुत अंतर के साथ बंगाल, बिहार व उड़ीसा में भी किया जाता था।

वैष्णव धर्म से प्रभावित होने के कारण अंकिआ-नाट के कथानक में कृष्ण-लीला तथा रामायण के प्रसंग मुख्य आधार रहे हैं। जन्माष्टमी, नंदोत्सव, ढोलयात्रा, रासपूर्णिमा, इत्यादि अवसरों पर इनका प्रदर्शन होता रहा है। बाद में इनके अत्याधिक लोकप्रिय होने पर अन्य अवसरों पर भी इन्हें प्रस्तुत किया जाने लगा। जिन दिनों किसान खेती के काम से फुर्सत पाता है, उन दिनों अंकिआ-नाटों का प्रदर्शन उपयुक्त माना जाता है। अंकिआ-नाट विधा में संस्कृत तथा असमिया नाट्य परंपराओं दोनों का एक अद्भुत मिश्रण देखा जा सकता है। सूत्रधार, अंकिआ-नाट में दो भाषा-बोलियों में, पहले संस्कृत में एवं बाद में ब्रजबोली अथवा असमिया में अपने भावों को प्रकट करता है।

22. Ankia-Naat and Bhaona

One of the traditional theatre-forms of Assam is Ankia Naat. The performance itself is known as Bhaona. The original term is *'Bhaoloa'*, which means the expression of emotions through mime and gesture. In Assam, this traditional form was born and developed in the monastries, and continues to thrive there. It is believed, that it was Shankar Dev who popularized this form of dance-drama. Apart from the basic Assamese character, there are also traces of traditions of Bengal and Orissa, as also of Mathura and Brindavan. The language used in Bhaona is called *Brajboli.* It is a linguistic union of many sources. It is possible, that this multi-based linguistic structure makes the form popular, with local changes and adaptations, in Bengal, Bihar and Orissa.

As *Bhaona* has been inspired by Vaishnavism, down the centuries, it has portrayed the pranks of Krishna and the deeds of the characters of the epic Ramayana. The festival of the birth of Krishna, *Janmashtami, Nandotsav, Dolyatra, Raaspoornima,* are occasions which can hardly be imagined without the performance of Bhaona. Gradually, this theatre form became so popular that its performances were no longer confined to just religious occasions. The farmers, for instance, after harvest, used to get the artists over, for a performance. Ankia Naat is a rare combination of classical Sanskrit and traditional Assamese theatre forms. The Sutradhar or narrator in Ankia Naat begins the play with a commentary in Sanskrit, and later on switches to Brajboli or Assamese.

23. अंकिआ-नाट और भाओना

सत्र में जिस स्थान पर भाओना प्रस्तुत किया जाता है, उसे भाओना घर कहते हैं। भाओना घर रूपी मण्डप लगभग 90 मीटर लम्बा तथा 15 मीटर चौड़ा होता है। मण्डप के चारों ओर किसी तरह की दीवार अथवा पर्दा नहीं होता, इसलिए बैठकर या खड़े होकर बड़ी संख्या में जनता प्रदर्शन देख सकती है। इस आयताकार मण्डप के एक छोर पर थापना (सिंहासन या मणिकूट) रखी जाती है। मण्डप के दूसरे छोर पर संगीत मण्डली का स्थान होता है। इस मण्डली को 'गायन-बायन' कहा जाता है। मृदंग, रेहरी-गोमुख, करताल, बड़ा झाँझ या मंजीरा इस शैली में प्रयुक्त होने वाले संगीत वाद्य हैं। मण्डप से थोड़ी दूर पर 'छतर' होता है, जिसको छद्म गृह या सज्जा गृह कह सकते हैं। मण्डप लकड़ी और बाँस के स्तम्भों पर खड़ा होता है। उसकी छत दुहरी होती है - एक तो लोहे की चादरों की, दूसरी भूसे की।

अन्य लोक नाट्यों की भाँति भाओना की प्रस्तुति भी पूर्वरंग द्वारा आरम्भ होती है, जिसे 'धेमाल' कहते हैं। इसके बाद सूत्रधार का प्रवेश, उसका अभिनीत हुए नाट्य की कथावस्तु का परिचय देना, चरित्रों से दर्शकों को परिचित कराना - ये सारे क्रियाकलाप संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना के लोक स्वरूप हैं। मुख्य नायक के प्रवेश के साथ प्रवेशगीत गाने का भी प्रचलन है। इसके बाद एक सफ़ेद चादर खींच कर पूर्वरंग की समाप्ति की सूचना, शेष चरित्रों का प्रवेश तथा स्वपरिचय इत्यादि के द्वारा इस नाट्य शैली के सभी नियमों का यथोचित पालन किया जाता है।

23. Ankia-Naat and Bhaona

The performance of Ankia Naat is presented in the monasteries in *Bhaona Ghar*. It is roughly ninety meters long and fifteen meters broad. As there are no walls surrounding this area, the audience can be huge and everyone can watch the play either seated or standing.

In this rectangular pavilion, the *Thaapana* or throne is placed on one end. The musicians have their reserved place at the other end of the pavilion. The singers are known as *Gaayan-Baayan*. The musicians, accompanying the singers play to *mridang, rehri-gomukh,* the large *jhanjh* or *manjeera.* A little distance from the pavilion is the *Chattar,* which is the room where the actors apply make up, and dress up for the show.

The pavilion where Bhaona is traditionally staged, is made of bamboo stumps tied together, to form the pillars covered on the top by iron sheets and matted straw.

Like most folk theatre forms, Bhaona also begins with the introductory *Poorvarang* also called *Dhemaal* in Assam. It is after this, that the Sutradhar comes in, dancing, giving the introduction of the play, the characters, the episodes. These traditions are all based on the classical Sanskrit theatre traditions. When the main character makes his entry, *pravesh geet,* or the song of entry, is inevitably sung.

It is after this, that a white sheet is stretched, indicating the conclusion of the introduction. It is also the signal given to the other characters to make an entry, introduce themselves, all in strict adherence to the rules of Bhaona.

24. अंकिआ-नाट और भाओना

भाओना में शुद्ध नृत्य और स्वांग दोनों पाये जाते हैं। बड़े नाटकों को 'नाट' एवं छोटे नाटकों को 'झुमुरा' कहते हैं। झुमुरा अधिकतर माधवदेव की रचनाएँ हैं। झुमुरा का प्रदर्शन दोपहर से पूरी रात चलता रहता है और प्रातः मुक्ति मंगल के अनुष्ठान के साथ समाप्त होता है। कभी-कभी कई गाँव मिलकर लगातार कई दिनों तक भाओना प्रदर्शन करवाते रहते हैं। इस तरह के प्रदर्शनों को बड़ा खेलिया भाओना कहते हैं।

भाओना में स्त्री पात्रों का अभिनय पुरुष कलाकार ही करते हैं, जिनकी वेशभूषा स्त्रियोचित और सुरुचिपूर्ण होती है। साड़ी या मेखला के साथ कृत्रिम केश का प्रयोग किया जाता है। कुछ पात्रों के चरित्र की अपेक्षाओं को ध्यान में रख कर टेराकोटा अथवा बाँस के मुखौटे पहनाए जाते हैं, जिन्हें लाल, पीले, नीले, काले रंगों द्वारा उभारा-सँवारा जाता है।

अंकिआ-नाट के नाटकों को असमी साहित्य में पूरी मान्यता प्राप्त है। अन्य साहित्यिक कृतियों की भाँति इन नाटकों का विशिष्ट स्थान है। नाटकों को अंकों, दृश्यों या प्रसंगों में नहीं बाँटा जाता, बल्कि कथावस्तु के निरंतर प्रवाह के द्वारा नाट्य प्रस्तुति खंडित हुए बिना चलती रहती है। नृत्य, गीत, अभिनय की प्रक्रियाओं के साथ गद्य का प्रयोग भी होता रहता है।

24. Ankia-Naat and Bhaona

In this traditional dance-drama, there are pure dance sequences as also sequences emphasizing the element of acting and mime. The plays with a long duration are called *Naat*, and those with a short time-span, *Jhumura*. The poet who has composed the largest number of *Jhumura*, is Madhav Dev. Normally, this dance form is only presented during the day, till sunset. After sunset, the *Naat,* is presented, often throughout the night. The performance ends in the early morning, with ritualistic *Muktimangal.* At times Bhaona is performed with the active support of people of many villages, lasting quite a few days and nights. These presentations are called *Bara Khelia Bhaona.*

As a general convention, the role of women in Bhaona is presented by men. Their costumes and make-up are essentially feminine and in good taste. They wear saree or mekhala and also wigs. Some of the characters wear masks, making their identity absolutely clear. These masks are made of bamboo or terracota. They are painted with red, yellow, blue and black colour, according to the role played.

In Assamese literature Ankia plays have been given a prominent place. Like other classical theatre forms, it has its own identity. Ankia is not divided into scenes, incidents, intervals, etc. It is a continuous narration and depiction of dance, song and sequences which are systematically presented. This coherence is also brought about by the use of prose, in both dialogue and narration.

भारतीय समाज में पारंपरिकता का विशेष स्थान है। परंपरा एक सहज प्रवाह है। निश्चय ही, पारंपरिक कलाएँ समाज की जिजीविषा, संकल्पना, भावना, संवेदना तथा ऐतिहासिकता को अभिव्यक्त करती हैं। नाटक अपने आप में संपूर्ण विधा है, जिसमें अभिनय, संवाद, कविता, संगीत इत्यादि एक साथ उपस्थित रहते हैं। परंपरा में नाटक क्रीड़ा की तरह है। यह एक तरह की लीला है।

लोकजीवन में गेयता एक प्रमुख तत्व है। सभी पारंपरिक भारतीय नाट्यशैलियों में गायन की प्रमुखता है। यह जातीय संवेदना का प्रकटीकरण है। पारंपरिक रूप से लोक की भाषा में सृजनात्मकता सूत्रबद्ध रूप में या शास्त्रीय तरीके से नहीं, अपितु बिखरे, छितराये, दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप होती है। जीवन के सघन अनुभवों से जो सहज लय उत्पन्न होती है, वही अंततः लोकनाटक बन जाती है। उसमें दुःख, सुख, हताशा, घृणा, प्रेम आदि मानवीय प्रसंग आते हैं।

अभिनय के तत्व पारंपरिक नाट्य प्रसंग में सहज ढंग से आते हैं। सामान्य रूप से अंगों तथा शब्दों में जो गतिशीलता तथा वक्रता होती है, कलाकारों द्वारा वही नाटकों में प्रयुक्त होता है।

पारंपरिक नाट्य एक रूप ग्रहण करके भी बहुत कुछ अनगढ़ बने रहते हैं। शायद इसके पीछे स्थानीयताओं की बहुलता है। शास्त्रीयता जब रूढ़ि बनती है तो उसे चुनौती लोकपरंपरा देती है, क्योंकि उसमें जड़ता के विरुद्ध लड़ने की ताकत है। यह रंगत उसकी बहुआयामिता बनाए रखती है। पारंपरिक नाटक यथास्थिति के विरोध तथा आम आदमी के अन्तर्मन को दर्शाते हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में तीज-त्यौहार, मेले, समारोह, अनुष्ठान, पूजा-अर्चना आदि होते रहते हैं, उन अवसरों पर ये प्रस्तुतियाँ भी होती हैं। इसीलिए इनमें जनता का सामाजिक दृष्टिकोण प्रकट होता है। इस सामाजिकता में गहरी वैयक्तिकता भी होती है।

पारंपरिक नाट्य में लोकरुचि के अलावा क्लासिक तत्त्व भी उपस्थित होते हैं, लेकिन क्लासिकी अंदाज़ अपने क्षेत्रीय, स्थानीय एवं लोकरूप में होते हैं। संस्कृत रंगमंच के निष्क्रिय होने पर उससे जुड़े लोग प्रदेशों में जाकर वहाँ के रंगकर्म से जुड़े होंगे। इस प्रकार लेन-देन की प्रक्रिया अनेक रूपों में संभव हुई। वस्तुतः इसके कई स्तर थे - लिखित, मौखिक, शास्त्रीय-तात्कालिक, राष्ट्रीय - स्थानीय।

विभिन्न पारंपरिक नाट्यों में प्रवेश-नृत्य, कथन नृत्य और दृश्य नृत्य की प्रस्तुति किसी न किसी रूप में होती है। दृश्य नृत्य का श्रेष्ठ उदाहरण बिदापत नाच नामक नाट्य शैली में भी मिलता है। इसकी महत्ता किसी प्रकार के कलात्मक सौंदर्य में नहीं, अपितु नाट्य में है तथा नृत्य के दृश्य पक्ष की स्थापना करने में है। कथन नृत्य पारंपरिक नाट्य का आधार है। इसका अच्छा उपयोग गुजरात की भवाई में देखने को मिलता है। इसमें पदक्षेप की क्षिप्र अथवा मंथर गति से कथन की पुष्टि होती है। प्रवेश नृत्य का उदाहरण है - कश्मीर का भाँडजश्न नृत्य। प्रत्येक पात्र की गति और चलने की भंगिमा उसके चरित्र को व्यक्त करती है। कुटियाट्टम् तथा अंकिआनाट में प्रवेश नृत्य जटिल तथा कलात्मक होते हैं। दोनों ही लोकनाट्य शैलियों में गति व भंगिमा से स्वभावगत वैशिष्ट्य को दर्शक तक पहुँचाते हैं।

Living traditions occupy a prominent place in the Indian social system. Any living tradition has a natural flow. There can be no doubt about the fact that traditional art forms reflect the ideals of the society, its determination to survive, its ethos, emotions, fellow-feelings, and so on. Drama in itself is a complete form of arts. It includes in its framework acting, dialogue, poetry, music, etc.

In community living, the art of singing has its own importance. In all the traditional theatre-forms, songs and the art of singing have an important role to play. Traditional music of the theatre is an expression of the feelings of the community. Traditionally the language of ordinary people has an element of creativity, though not based on classical or grammatical roots. This kind of creativity is spontaneous, emerging from the circumstances. When there is intensity of emotions, there is a natural kind of rhythm in the expressions. It is this natural rhythm from which emerges the traditional theatre-form. In this art form, sorrow, joy, frustration, hatred and love have their role and place.

The elements of acting in folk theatre take a natural tone. Normally, there is dynamism and flexibility in words and body language. These are used by the actors, with slight emphasis and subtle change.

Traditional theatre forms even after acquiring a distinctive style have an ample scope for improvisation, making it possible for assimilation of local traditions. When the hold of conventional rules and rituals grow strong, then local traditions form a kind of challenge, as they have a strength of their own against rigidity. The potential of local traditions to fight against rigidity makes the theatre form multi-dimensional. Traditional theatre forms reflect the thoughts of the common man.

In different regions of India, there are religious festivals, fairs, gatherings, ritual offerings, prayers, almost throughout the year. During these occasions, traditional theatre forms are presented. They reflect the common man's social attitudes and perceptions. In this social portrayal, there is also the individual's role which is given due importance.

Traditional theatre forms, incorporate not only the common man's interests but there is also a classical element in them. This classical facet, however, takes on regional, local and folk colouring. It is possible, that those associated with the classical world of Sanskrit drama, went to the neighbouring regions after its decline and intermingled with the local theatre forms. This kind of synthesis, give-and-take must have taken place on various levels such as written, verbal, classical, contemporary, national and local.

In traditional theatre forms there are special styles of dance portraying the entry on to the stage or platform, narrative and descriptive roles. The best example of descriptive acting, is the *Bidapat naach*. In this traditional theatre form, emphasis is not on beauty but on acting itself and narrative and descriptive skills. Dance as a narrative art is the base of theatre form which can be seen in the traditional theatre form of *Bhavai* of Gujarat. In this form, quick or slow foot movement is a means of narration. The art of making the entry by dancing has been perfected in the traditional Kashmiri theatre form, *Bhand Jashn*. The way each character walks and enters the platform, identifies him. In *Koodiyaattam* and *Ankia Naat*, the entry by dancing itself is complicated and artistic. In both the forms, the tempo and basic posture and gesture identifies the role of the character.

पारंपरिक नाट्य में परंपरागत निर्देशों तथा तुरंत उत्पन्न मति का मिश्रण होता है। परंपरागत निर्देशों का पालन गंभीर प्रसंगों पर होता है, लेकिन समसामयिक प्रसंगों में अभिनेता या अभिनेत्री अपनी आवश्यकता से भी संवाद की सृष्टि कर लेता है। भिखारी ठाकुर के 'बिदेसिया' में ये दोनों स्तर पर कार्य करते हैं। बिदेसिया, जात्रा, कीर्तनिया, बिदापत नाच में गंभीरता तथा लालित्य का मिश्रण है, यह अंकिआनाटों में भी प्रमुखता से लक्षित होता है।

पारंपरिक नाट्यों में कुछ विशिष्ट प्रदर्शन रुढ़ियाँ होती हैं। ये रंगमंच के रूप, आकार तथा अन्य परिस्थितियों से जन्म लेती हैं। पात्रों के प्रवेश तथा प्रस्थान का कोई औपचारिक रूप नहीं होता। नाटकीय स्थिति के अनुसार बिना किसी भूमिका के पात्र रंगमंच पर आकर अपनी प्रस्तुति करते हैं। किसी प्रसंग और खास दृश्य के पात्रों के एक साथ रंगमंच को छोड़कर चले जाने अथवा पीछे हटकर बैठ जाने से नाटक में दृश्यांतर बता दिया जाता है।

पारंपरिक नाट्यों में सुसंबद्ध दृश्यों के बदले नाटकीय व्यापार की पूर्ण इकाइयाँ होती हैं। इसका गठन बहुत शिथिल होता है, इसीलिए नए-नए प्रसंग जोड़ते हुए कथा-विस्तार के लिए काफी संभावना रहती है। अभिनेताओं तथा दर्शकों के बीच संप्रेषण सीधा व सरल होता है।

नाट्य परंपरा पर औद्योगिक सभ्यता, औद्योगीकरण तथा नगरीकरण का असर भी पड़ा है। इसकी सामाजिक-सांस्कृतिक पड़ताल करनी चाहिए। कानपुर शहर नौटंकी का प्रमुख केन्द्र बन गया था। नर्तकों, अभिनेताओं, गायकों इत्यादि ने इस स्थिति का उपयोग कर स्थानीय नायकों के यश, पारंपरिक कहानियों, प्रेम-कथाओं को नाटक का रूप दे दिया तथा स्थानीय रूप को प्रमुखता से उभारा।

पारंपरिक नाट्य की विशिष्टता उसकी सहजता है। आखिर क्या बात है कि शताब्दियों से पारंपरिक नाट्य जीवित रहने तथा सादगी बनाए रखने में समर्थ सिद्ध हुए हैं? सच तो यह है कि दर्शक जितना शीघ्र, सीधा, वास्तविक तथा लयपूर्ण संबंध पारंपरिक नाट्य से स्थापित कर पाता है, उतना अन्य कला रूपों से नहीं। दर्शकों की ताली, वाह-वाही उनके संबंध को दर्शाती है।

वस्तुत: पारंपरिक नाट्यशैलियों का विकास ऐसी स्थानीय या क्षेत्रीय विशिष्टता के आधार पर हुआ, जो सामाजिक, आर्थिक स्तरबद्धता की सीमाओं से बँधी हुई नहीं थीं। पारंपरिक कलाओं ने शास्त्रीय कलाओं को प्रभावित किया, साथ ही, शास्त्रीय कलाओं ने पारंपरिक कलाओं को प्रभावित किया। यह एक सांस्कृतिक अन्तर्यात्रा है।

In traditional theatre, age-old forms, customs and the desire to improvise are intermingled. It is usually when the significant themes are enacted, that the acting restricts itself to traditional norms, not deviating from it. But, everytime the theme inches towards the contemporary, the actors improvise as far as dialogues delivery is concerned. In the *Bidesia* of Bhikhari Thakur, the actors perform on both levels. *Bidesia, Jatra, Kirtaniya, Bidapat* are all dance and theatre forms in which there is a synthesis of intensity and *lalitya* which can also be explicitly seen in the *Ankia Naat*.

In traditional theatre forms there are certain conventions of presentations depending upon and changing according to the form and size of the stage or the platform and other available situations. There is no formal set-up governing the entry or exit of the actors. Depending on the situation or context, the actors enter into the stage and enact their role without being formally introduced. After a particular event or incident is over, all the artists make an exit, or all of them sit down on the sides of the stage or near the backdrop, conveying the change of a scene.

In traditional theatre forms, there is no such thing as episodes. There is always a continuity in its theme, structure and presentation. There is also a scope for improvisation and incorporation of new references leading to subtle extension in the story-line. There is direct and intimate communication between the actors and the audience.

Traditional theatre forms have definitely been influenced by industrial civilization, industrialization, and urbanization. The socio-cultural aspects of these influences should be carefully studied. There was a time when Kanpur became the centre of the traditional theatre *Nautanki.* Artists, dancers and singers produced plays based on local heroes, their popularity and traditional love stories. Thus, a local theatre form acquired a significance in the field of entertainment.

Traditional theatre forms have a common distinguishing feature, that is the element of simplicity. What is the underlying force of traditional theatre forms that has enabled it to survive and maintain its simplicity? The fact remains, that it is the immediate, direct, realistic and rhythmic relationship that the spectators are able to develop with the artists of traditional theatre forms which is generally not experienced in other art forms. It is reflected in the applaud by the spectators by means of clapping their hands.

Secondly the development of traditional theatre forms is based on such local and regional peculiarities which are not bound and restricted by social and economic divisions, limitations, etc. Traditional art forms have influenced classical art forms and vice-versa. It is an eternal journey in the sphere of 'culture'.

विभिन्न पारंपरिक नाट्यशैलियों में कुछ खास रसों की सृष्टि के लिए अभिनेताओं को विशेष प्रशिक्षण लेना होता है। रासलीला में बाल और किशोर भावनाओं की प्रधानता के कारण कम उम्र के बालकों से अभिनय कराया जाता है, जबकि यक्षगान में 'वीर रस' के लिए हृष्ट-पुष्ट होना ज़रूरी है। नौटंकी में शृंगार रस का प्राधान्य होता है, इसलिए वैसी ही भावना उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

पारंपरिक लोकनाट्यों में स्थितियों में प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिए पात्र मंच पर अपनी जगह बदलते रहते हैं। इससे एकरसता भी दूर होती है। अभिनय के दौरान अभिनेता व अभिनेत्री प्राय: उच्च स्वर में संवाद करते हैं। शायद इसकी वजह दर्शकों तक अपनी आवाज़ सुविधाजनक तरीके से पहुँचानी है। माइक्रोफोन के कारण अब स्थितियाँ कुछ बदली हैं। पात्र माइक्रोफोन के इर्द-गिर्द रहते हुए अपनी बात कहते हैं।

पारंपरिक नाट्यों में लिखित सामग्री पूर्ण नहीं होती। नौटंकी, जात्रा आदि का लेखन अब भी होता है। लिखित सामग्री से अधिक स्मृति और आशुपरकता पर बल होता है। अभिनेता अपने माध्यम से भी कुछ न कुछ जोड़ते चलते हैं। जो आशु शैली में जोड़ा जाता है, वह दर्शकों को भाव-विभोर कर देता है, साथ ही, दर्शकों से सीधा संबंध भी बनाने में सक्षम होता है। बीच-बीच में विदूषक भी यही कार्य करते हैं। वे हल्के-फुल्के ढंग से बड़ी बात कह जाते हैं। इसी बहाने वे व्यवस्था, समाज, सत्ता, परिस्थितियों पर गहरी टिप्पणी करते हैं। विदूषक को विभिन्न पारंपरिक नाट्यों में अलग-अलग नाम से पुकारते हैं। संवाद की शैली कुछ इस तरह होती है कि राजा ने कोई बात कही, जो जनता के हित में नहीं है तो विदूषक अचानक उपस्थित होकर जनता का पक्ष ले लेगा और ऐसी बात कहेगा, जिससे हँसी तो छूटे ही, राजा के जन-विरोधी होने की कलई भी खुले।

पारंपरिक नाट्यों के कलाकार प्राय: 'अत्यधिक' पढ़े-लिखे नहीं होते, किन्तु अपने अभिनय व भावों के संप्रेषण से पूरा कथ्य सामने ला देते हैं। वे स्वयं अच्छा गा लेते हैं, क्योंकि उनके सुर में पीढ़ी-दर-पीढ़ी की मिठास और लय होती है। इस तरह की नाट्यशैलियों में संगीत को उपयोगी दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता है। नगाड़ा दर्शकों को एकत्र कर लेता है तो मृदंग और ढोलक प्रसंगों और संवादों को जोड़ते हैं।

In traditional theatre forms, for certain sentimental scenes and their presentation, special training is given to the artists. In *Raasleela* due to emphasis on childhood pranks and adolescence, the roles are given to the young boys. In *Yakshagaana*, on the other hand, *veer rasa* requires the characters to look tough and muscular. In *Nautanki*, it is the *shringaar rasa* that is emphasized, resulting in a concerted effort by the artists to match the emotions.

In traditional theatre forms, characters keep changing their place on the stage to be more impressive and to give the situation a greater significance. This technique also reduces the chance of boredom through repetition and stillness. Dialogues delivery is usually carried out in a high pitch. This helps the actors in reaching out to a larger audience. The artists always add something or the other to the original dialogue on their own. The changes brought through improvisations, make the spectators ecstatic. Also, it establishes a direct relationship between the artists and the spectators. The clown also plays a similar role. While being humorous,he also touches upon the socio-economic, political issues and situations with lot of satire. There are different methods too, in the way the clown makes his appearance. If the king, in traditional theatre forms, decides on a step not beneficial for the people at large, the clown appears and takes the side of the common man. He makes the audience laugh and at the same time discloses the anti-people attitude of the king.

The actors of traditional theatre forms are mostly not highly educated. But, through acting and with the help of emotions and body movement, they present the entire theme. They are able to sing reasonably well, since they have inherited the sweetness and rhythm present in the voice of their ancestors and forefathers. In traditional theatre forms, music is a useful means of communication with the audience. The *nagaara* heralds the audience with powerful drum beats. Percussion instruments like *mridang* and *dholak* weave together the situation and the dialogue.

विविध पारंपरिक नाट्य शैलियाँ

स्वांग, नौटंकी, भगत आदि प्राय: समानार्थी हैं। इनमें शैलीगत वैभिन्य ज़रूर है। स्वांग में पहले गीत का विधान रहता था, परंतु बाद में गद्य का भी समावेश हुआ। इसमें भावों की कोमलता, रससिद्धि के साथ-साथ चरित्र का विकास भी होता है। स्वांग की दो शैलियाँ (रोहतक तथा हाथरस) उल्लेखनीय हैं। रोहतक शैली में हरियाणवी (बांगरू) भाषा तथा हाथरसी शैली में ब्रजभाषा की प्रधानता है। **नौटंकी** प्राय: उत्तर प्रदेश से सम्बंधित है। इसकी कानपुर, लखनऊ तथा हाथरस शैलियाँ प्रसिद्ध हैं। इसमें प्राय: दोहा, चौबोला, छप्पय, बहर-ए-तबील छंदों का प्रयोग किया जाता है। पहले नौटंकी में पुरुष ही स्त्री पात्रों का अभिनय करते थे, अब स्त्रियाँ भी काफी मात्रा में इसमें भाग लेने लगी हैं। कानपुर की गुलाब बाई ने इसमें जान डाल दी। उन्होंने नौटंकी के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित किए। **भवाई**, गुजरात और राजस्थान की पारंपरिक नाट्यशैली है। इसका विशेष स्थान कच्छ-काठियावाड़ माना जाता है। इसमें भुंगल, तबला, ढोलक, बाँसुरी, पखावज, रबाब, सारंगी, मंजीरा इत्यादि वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता है। भवाई में भक्ति और रूमान का अद्‌भुत मेल देखने को मिलता है। **रासलीला** में कृष्ण की लीलाओं का अभिनय होता है। ऐसी मान्यता है कि रासलीला सम्बंधी नाटक सर्वप्रथम नंददास द्वारा रचित हुए। इसमें गद्य-संवाद, गेय पद और लीला दृश्य का उचित योग है। इसमें तत्सम के बदले तद्‌भव शब्दों का अधिक प्रयोग होता है। **माच**, मध्य प्रदेश का पारंपरिक नाट्य है। 'माच' शब्द मंच और खेल दोनों अर्थों में इस्तेमाल किया जाता है। माच में पद्य की अधिकता होती है। इसके संवादों को बोल तथा छंद योजना को वणग कहते हैं। इसकी धुनों को रंगत के नाम से जाना जाता है। **भाओना**, असम के अंकिआ नाट की प्रस्तुति है। इस शैली में असम, बंगाल, उड़ीसा, वृंदावन-मथुरा आदि की सांस्कृतिक झलक मिलती है। इसका सूत्रधार दो भाषाओं में अपने को प्रकट करता है - पहले संस्कृत, बाद में ब्रजबोली अथवा असमिया में। देवपूजा के निमित्त आयोजित मेलों, अनुष्ठानों आदि से जुड़े नाट्यगीतों को **'जात्रा'** कहा जाता है। यह मूल रूप से बंगाल में पला-बढ़ा है। वस्तुत: श्री चैतन्य के प्रभाव से कृष्ण-जात्रा बहुत लोकप्रिय हो गयी थी। बाद में इसमें लौकिक प्रेम प्रसंग भी जोड़े गए। इसका प्रारंभिक रूप संगीतपरक रहा है। इसमें कहीं-कहीं संवादों को भी संयोजित किया गया। दृश्य, स्थान आदि के बदलाव के बारे में पात्र स्वयं बता देते हैं। **भाँड-पाथर**, कश्मीर का पारंपरिक नाट्य है। यह नृत्य, संगीत और नाट्यकला का अनूठा संगम है। व्यंग्य, मज़ाक और नकल उतारने हेतु इसमें हँसने और हँसाने को प्राथमिकता दी गयी है। संगीत के लिए सुरनाई, नगाड़ा और ढोल इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। मूलत: भाँड कृषक वर्ग के हैं, इसलिए इस नाट्यकला पर कृषि-संवेदना का गहरा प्रभाव है।

Different forms of traditional theatre

The traditional theatre forms of Swang, Nautanki, Bhagat, etc. are usually similar. There is often stylistic diversity, which strengthens their identity.

Originally, the theatre form **Swang**, was mainly music-based. Gradually, prose too, played its role in the dialogues. The softness of emotions, accomplishment of *rasa* alongwith the development of character can be seen in this theatre form. The two most important styles of Swang are from Rohtak and Haathras. In the style belonging to Rohtak, the language used is Haryanvi (Bangru) and in Haathras, it is Brajbhasha.

Nautanki is usually associated with Uttar Pradesh. The most popular centres of this traditional theatre form are Kanpur, Lucknow and Haathras. The meters used in the verses are : *Doha, Chaubola, Chhappai, Behar-e-tabeel*. There was a time when only men acted in Nautanki but nowadays, women have also started taking part in the performances. Among those remembered with reverence is Gulab Bai of Kanpur. She gave a new dimension to this old theatre form.

Bhavai is the traditional theatre form of Gujarat. The centers of this form are Kutch and Kathiawar. The instruments used in Bhavai are : *Bhungal, Tabla,* flute, *Pakhaawaj, Rabaab, Sarangi, Manjeera*, etc. In Bhavai, there is a rare synthesis of devotional and romantic sentiments.

Raasleela is based exclusively on Lord Krishna's legends. It is believed that Nand Das wrote the initial plays based on the life of Krishna. In this theatre form the dialogues in prose are combined beautifully with songs and scenes from Krishna's pranks.

Maach is the traditional theatre form of Madhya Pradesh. The term Maach is used for the stage itself as also for the play. In this theatre form songs are given prominence in between the dialogues. The term for dialogue in this form is *bol* and rhyme in narration is termed *vanag*. The tunes of this theatre form are known as *rangat.*

Bhaona is a presentation of the Ankia Naat of Assam. In Bhaona cultural glimpses of Assam, Bengal, Orissa, Mathura and Brindavan can be seen. The *Sutradhaar*, or narrator begins the story, first in Sanskrit and then in either Brajboli or Assamese.

Fairs in honour of gods, or religious rituals and ceremonies have within their framework musical plays are known as **Jatra**. This form was born and nurtured in Bengal. Krishna Jatra became popular due to Chaitanya's influence. Later, however, worldly love stories too, found a place in Jatra. The earlier form of Jatra has been musical. Dialogues were added at later stage. The actors themselves describe the change of scene, the place of action, etc.

Bhand Pather, the traditional theatre form of Kashmir, is a unique combination of dance, music and acting. Satire, wit and parody are preferred for inducing laughter. In this theatre form, music is provided with *Surnai, Nagaara* and *Dhol*. Since the actors of Bhand Pather are mainly from the farming community, the impact of their way of living, ideals and sensitivity is discernible.

इस पैकेज़ में विद्यार्थी निम्न विषयों से अवगत हो सकते हैं :

- भारत की पारंपरिक नाट्य-शैलियों का मर्म,
- भारतीय जनजीवन का मनोविज्ञान,
- लोक संगीत के विभिन्न आयाम,
- विभिन्न क्षेत्रों की आनुष्ठानिक परंपराएँ,
- लोक गाथाओं की अनन्य छवियाँ।

यहाँ कुछ गतिविधियाँ सुझाई गई हैं, जिनके आधार पर चित्रों तथा उनके पीछे के पाठों का उपयोग किया जा सकता है। उन्हें सुझाव दिया जाता है कि इन पारंपरिक नाट्य-शैलियों का व्यावहारिक और सैद्धान्तिक प्रशिक्षण छात्रों को देने का उपक्रम करें। इससे विद्यार्थियों में पारंपरिक नाट्यों की सौंदर्यदृष्टि विकसित होगी, साथ ही वे जनसमुदाय में मनोरंजन और रसिकता की भावना उत्पन्न करते हुए अभिरुचि का नया समाजशास्त्र रच सकते हैं। आज जनता की रुचि को परिष्कृत करने की आवश्यकता है। पारंपरिक नाट्यों की लय, संगीत तथा भंगिमाओं से अवगत होकर उनका मंचन भी किया जा सकता है।

1. भारत के विभिन्न क्षेत्रों की अपनी-अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं। उनके साहित्य, कला, नृत्य, नाट्य के बारे में जानकारी जुटाई जा सकती है। विशेष तौर पर, पारंपरिक नाट्यों के शिल्प का अध्ययन किया जा सकता है। बहुत ही सामान्य लोगों, जो समाज में महत्त्वपूर्ण नहीं माने जाते, के पास लोक नाट्यों की इतनी तकनीकें होती हैं कि कोई भी अचंभित हो सकता है। पारंपरिक कलाएं ऐसे ही गुणीजनों के पास सुरक्षित हैं। शिक्षक ऐसे लोगों का पता लगा कर उनके घर जाएँ तथा छात्रों से उन्हें मिलवाएँ। शिक्षक पारंपरिक नाट्य में कार्य करने वाले ऐसे लोगों से नाट्य-शब्दावली, प्रसंग, वेशभूषा, संगीत इत्यादि के बारे में छात्रों को जानकारी दिलवा सकते हैं।

2. अपने विद्यालय में पारंपरिक नाट्य अभिनेताओं, अभिनेत्रियों तथा उससे सम्बद्ध अन्य लोगों को बुलाकर कार्यशालाएँ आयोजित करनी चाहिए। उसमें सिर्फ़ विद्यार्थियों या शिक्षकों को ही शामिल नहीं करना चाहिए, वरन् क्षेत्र के इच्छुक लोगों की भी भागीदारी को आसान बनाना चाहिए। इससे क्षेत्रीय और प्रकारान्तर से राष्ट्रीय स्तर पर पारंपरिक नाट्य शैलियों के विकास का गहन वातावरण बन सकेगा।

In this package, students can get detailed information on:

- the essence of Indian traditional theatre forms
- the psychology of the Indian people's life
- different dimensions and aspects of folk music
- ritualistic traditions of different regions of India and
- some unique aspects of folk art forms.

Some activities have been suggested, on the basis of which one can use the printed pictures as well as the text. Teachers are suggested to give an idea of the richness of Indian traditions through instructions in theatre forms as also the ideals forming the basis of these arts. This will give the students an idea of the aesthetics underlying these forms, and also by inspiring them to create in the masses new aspects of entertainment and enjoyment, which might culminate in establishing a new sociology of interest. Today it is necessary to develop aesthetic awareness. The performances can be staged after learning about traditional theatre forms, its rhythm, music and postures.

1. The different regions of India have their own special cultural aspects. These aspects have to be noted down systematically, so that regional literature, art, dance and theatre forms can be referred to by everyone. Especially, the crafts of various traditional theatre forms can be studied. It may sound strange but true, that it is the common people who have perfected certain techniques of presentation on the stage or platform, which can astonish anyone. It is people like them, who are storehouses of information and techniques about traditional theatre forms. Teachers should find out these masters of the art of acting and introduce their students to them. With these old masters of theatrical traditions, teachers could enrich their own information and communication skills as also that of their students, with theatrical terminology, context, costumes, music, etc.

2. Workshops should be organized in the institutions with the help of artists of traditional theatre forms. In these workshops, not only in students and teachers, but also others interested in theatre and its various aspects should be invited to take part. This will lead to the development of traditional theatre forms on both regional and national level.

3. अपने क्षेत्र में होने वाले पारंपरिक नाट्य प्रदर्शन को देखने के लिए छात्रों और शिक्षकों को प्रेरित करना चाहिए।

4. ऐसी प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय यात्रा का आयोजन करना चाहिए, जिसमें छात्र और शिक्षक भारत के विभिन्न पारंपरिक नाट्यों को देखते हुए, उनके कलाकारों से मिल सकें। जिन नाट्यकर्मियों से मिलना है, उनकी सूची तथा तत्सम्बंधी योजना पहले से बना ली जानी चाहिए।

5. अपने विद्यालय में पारंपरिक नाट्यों के मंचन करवाते रहना चाहिए। ऐसे विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को पुरस्कृत भी करना चाहिए, जो अभिनय तथा मंचन की प्रस्तुति में महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकें।

6. क्षेत्र में पारंपरिक नाट्यों, उनसे जुड़े संगीत, वेशभूषा इत्यादि की प्रतियोगिताएँ होती रहनी चाहिएँ। इससे बेहतर कार्य करने तथा विभिन्न आयामों से परिचित होने का मौका मिलेगा।

7. छात्रों से विभिन्न अनुष्ठानों तथा पारंपरिक नाट्य प्रसंगों के अन्तर्सम्बंधों व मूल स्रोतों को खोजने व समझने के लिए कहा जाना चाहिए।

8. दूसरी भाषाओं में प्रस्तुत किये जाने वाले पारंपरिक नाट्यों को अपने क्षेत्र की भाषा में अनूदित किया जाना चाहिए। इससे भाषिक स्तर पर निकटता तथा विनिमय का वातावरण बनेगा।

9. एक ऐसा कोष बनाया जाना चाहिए, जिसके माध्यम से जरूरतमंद तथा विकसनशील प्रतिभाशाली कलाकारों को सहायता उपलब्ध करायी जा सके।

10. पारंपरिक नाट्यकर्मियों का जीवनवृत्त तैयार किया जाना चाहिए तथा उसे विभिन्न पत्रिकाओं, पत्रों, पुस्तकों में प्रकाशित कराने का प्रयास भी हो। इससे अज्ञात कलाकारों तथा नाट्यविधाओं के बारे में लोगों को जानकारी मिल सकेगी।

11. मंचन के बारे में छात्रों को बारीकी से बताया जाना चाहिए, ताकि मंच की साजसज्जा, वातावरण तथा उससे जुड़े अन्य प्रसंगों से वे परिचित हो सकें।

12. पारंपरिक नाट्यों में आने वाले पुष्पों, पशु-पक्षियों, नगरों तथा छंदों के बारे में अध्ययन करना चाहिए।

3. Students and teachers should be encouraged to watch performances of traditional theatre forms taking place in their region.

4. Provincial and national trips should be organized so that students and teachers get an opportunity to study different forms of traditional theatre and meet the artists. It would be better to draw up the list of artists to be contacted during the trip.

5. Teachers should organize in their schools frequent performances of traditional dance dramas. Students and teachers who excel in these activities should be given awards as well.

6. There should be frequent competitions of plays and music, costumes, etc. associated with these. This will act as incentive to perform better and at the same time acquaint them with different dimensions of the theatre forms.

7. Students should be asked to study the various ritualistic contexts of traditional theatre forms, their mutual dependence and influence on each other and also trace their roots.

8. Traditional theatre forms being performed in other languages should be translated in their regional languages which will lead to atmosphere of exchange and closeness at the level of languages and literature.

9. There should be a fund for helping those upcoming artists who have talent and need financial help.

10. Artists and others associated with traditional theatre forms should have their biographies printed and published in the various branches of the media. This will give information to the reader of unknown artists as also lesser known art forms.

11. The art of staging and presentation, should be described in depth so as to introduce the students to stage-decor and other minute details.

12. The flowers, animals, birds, cities mentioned in the musical meters used in the verses of traditional theatre forms should be carefully taught and studied.

13. The musical instruments used in traditional theatre forms should be understood and students trained to play them. There should be a collection of these instruments in the schools so that students can play them when the time permits.

13. विविध नाट्य-शैलियों में बजने वाले वाद्य यंत्रों को गहराई से समझने तथा उनके उपयोग की शिक्षा दी जानी चाहिए। यह भी प्रयत्न होना चाहिए कि वाद्ययंत्रों को बनवा या खरीदकर विद्यालय में रख लें। उनका समयानुकूल उपयोग होता रहेगा।

14. विद्यालय की दीवारों पर पारंपरिक नाट्यों का छायांकन भी लगाना चाहिए, ताकि एक कलात्मक वातावरण की निर्मिति हो सके।

15. पारंपरिक नाट्यों के दृश्य एवं संबंधित सामग्री भी विद्यालय में रख सकते हैं। उन्हें समय-समय पर देखते हुए जानकारी तथा मनोरंजन प्राप्त किया जा सकता है।

16. ऐसी पुस्तक-पुस्तिकाएँ विद्यालय के पुस्तकालय में रखी जा सकती हैं, जिनसे शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को विविध पारंपरिक नाट्य शैलियों की जानकारी हो सके।

17. विद्यालय, क्षेत्र एवं जिला स्तर पर इस प्रसंग से जुड़ी गोष्ठियाँ होनी चाहिए, जिनके माध्यम से समकालीन परिदृश्य पर प्रकाश पड़ सके। इस अवसर पर नयी दृष्टियों, भावभंगिमाओं तथा प्रासंगिकता का भी पता लगेगा।

18. छात्रों से विविध पारंपरिक लोकनाट्यों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए कहा जाना चाहिए। इससे भारत की क्षेत्रीयताओं तथा उनकी सांस्कृतिक संरचनाओं की गहनता समझी जा सकेगी।

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा तैयार इस पैकेज तथा अन्य सांस्कृतिक पैकेजों के माध्यम से छात्रों तथा शिक्षकों में कलात्मक-अभिनयात्मक अभिरुचि विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

आभार : श्री पंचानन पाठक

संपादन : गिरीश जोशी
ऋषि वशिष्ठ

हिन्दी आलेख : डा॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव

अंग्रेजी आलेख : श्रीमती स्मृति चोपड़ा

चित्र : अनिल शर्मा
अनिल अग्रवाल
संगीत नाटक अकादमी
श्री अविनाश पसरीचा

14. The schools should have pictures and paintings on the walls depicting the world of the theatre so that there is a constant awareness of the various aspects of the subject in the students.

15. The schools should collect audio-visuals and other relevant material on traditional theatre forms. Regular viewing of these can help in familiarization and appreciation of these theatre forms.

16. There should be a collection of books and magazines on the subjects of traditional theatre forms. A bibliography should be readily available in the school library.

17. There should be frequent seminars and meetings on issues connected with theatre forms in schools and on regional and district level so that there is a better assessment and appreciation of contemporary conditions and situations. It will inspire to generate new viewpoints and nascent thoughts.

18. Students should be encouraged to make comparative study of different theatre forms. This will lead to a better understanding and appreciation of the regional variations and their cultural structures.

The packages produced by the Centre for Cultural Resources and Training, and other similar devices should be used to enrich the artistic sensitivity as also the acting talents of the students, inspiring them to attain higher goals.

Acknowledgement : Shri Panchanan Pathak
Editing : Girish Joshi
Rishi Vashist
Hindi Text : Dr. Ravindra Nath Srivastava
English Text : Smt. Samriti Chopra
Photography : Anil Sharma
Anil Aggarwal
Sangeet Natak Academy
Shri Avinash Pasaricha

भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियाँ
Traditional Theatre Forms of India
1

1. भाँड पाथर

उत्तर भारत, विशेषकर पंजाब और कश्मीर में भाँड पाथर सामाजिक स्थिति पर व्यंग्य की प्राचीन पद्धति है। भाँड शब्द का अर्थ है मसख़रा, विदूषक। कश्मीर की पारंपरिक भाँड नाट्य शैली की शब्दावली में पाथर का अर्थ एक खेल या नाटक होता है। संस्कृत के नाटकों के इतिहास में लोकमंच का विशेष उल्लेख नहीं है। इस में समवकार, व्यायोग, प्रहसन, भाण और सट्टक की चर्चा है। संभव है कि भाँड शब्द भान से उत्पन्न हुआ हो, जो कि लोक नाट्य श्रेणी में 'भाँड-भँडैती' के रूप में लोकप्रिय है। कश्मीर की भाँड पाथर परंपरा नृत्य, संगीत और नाट्य कला का अद्‌भुत संगम है जिसमें व्यंग्य, मज़ाक और नकल उतारने हेतु हँसने और हँसाने को प्राथमिकता दी जाती है। नर्तक, गायक, अभिनेता, इस परंपरा से संबंधित सभी कलाकार, भाँड ही कहलाते हैं। ऐसा माना जाता है कि सदफ भाँड, दरबारी संगीतकार के ही वंशज थे और उन्होंने ही भाँड परंपरा का विकास किया।

2. भाँड पाथर

पंद्रहवीं शताब्दी में, सुल्तान ज़ैनुल आबिदीन के राज में नाटकों और नाटककारों का विशेष महत्व था। दरबार में मंच प्रदर्शन हुआ करता था। कहा जाता है कि कश्मीर के राजा अली शाह और हसन शाह ने कर्नाटक संगीत के विद्वानों को भी आमंत्रित किया। स्थिति में परिवर्तन आया और नाट्यकला दरबार में प्रस्तुत नहीं की जा सकी, लेकिन लोक कला जीवित रही। भांड दूर-दराज़ के गाँवों में भी जाते थे और अपनी कला जीवित रखते हुए समाज के सभी वर्गों का मन बहलाते थे।

भाँड, मूलरूप से किसान वर्ग के ही हैं। मई और जून के महीनों में फसल पकने के साथ ही, वे नाच-गा कर, अनाज, कपड़ा और पैसा इत्यादि पाते हैं। भाँड, देवी-देवताओं की आराधना भी अपनी कला के माध्यम से करते हैं। इन विशेष कार्यक्रमों के मंचन को भाँड जश्न कहा जाता है। देवी-देवताओं की आराधना ही नहीं, इस जश्न में व्यंग्य, मज़ाक, नक़ल उतारने का भरपूर समावेश है। जब भाँडों का कार्यक्रम शुरु हो जाता है तो नाई, झाड़ू लगाने वाला, पंडित, किसान, राजा, रसोइया, मल्लाह इत्यादि, सब की बारी आती है। भाँड कला में नक़ल उतारने का ही विशेष महत्व है। नक़ल उतार कर राजा तथा भद्रजनों का मज़ाक उड़ाना - इस कला की विशेषता है।

3. भाँड पाथर

भाँड पाथर के प्रदर्शन में पूर्व निर्धारित एवं लिखित पटकथा का प्रयोग नहीं होता है। नृत्य का आभास देने वाली मुद्राओं और हाव-भाव से कहानी आगे बढ़ाई जाती है। भाँड पाथर में पुरुषों द्वारा ही स्त्रियों का वेश प्रस्तुत किया जाता है। इस लोक कला में मूलत: नक़ल करने व रचने वाले दो कलाकार, स्त्रियों का वेश निभाने वाले दो पुरुष, दो सुरनाई (शहनाई से मिलता-जुलता सुषिर वाद्य) वादक, दो ढोल बजाने वाले और एक नगाड़ा वादक होते हैं। नाटक के विभिन्न पात्र, दर्शकों ही के बीच से गुज़र कर अपनी कला प्रस्तुत करते हैं। वेशभूषा और साज-सज्जा कश्मीरी ही होती है। शिकारगा, एक व्यंगात्मक पारंपरिक पाथर है जो कि जंगल में जाकर हिरण का शिकार करने वाले शिकारियों की कहानी पर आधारित है। जिसमें वे किसी अन्य शिकारी द्वारा आखेटित बाघ को अपना शिकार बताते हैं। इस पारंपरिक नाट्य शैली में, शिकारगा ही केवल ऐसा पाथर है जिसमें जानवरों का वेश प्रस्तुत करने के लिए मुखौटों का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत चित्र (नीचे, दाएं) में दो कलाकारों को हिरण और बाघ के मुखौटे लगाए हुए देखा जा सकता है।

4. स्वांग

स्वांग, हरियाणा और पंजाब की पारंपरिक लोकनाट्यकला है। जहाँ तक विषयवस्तु, नाट्य शैली और रंगमंच की तकनीकी इकाइयों का सवाल है, यह उत्तर प्रदेश की लोकनाट्य शैली नौटंकी से मिलती-जुलती है। स्वांग शब्द का अर्थ है – वेशभूषा और सज्जा के आधार पर अपना रूप इस तरह बदल लेना कि असली रूप का पता ही न चले और नकली रूप भी नकली न प्रतीत हो। जीविकोपार्जन के लिये बहुरुपिये भी रूप बदल कर स्वांग ही रचते थे। स्वांग के कलाकार होली के त्यौहार पर टोलियों में घूम-फिर कर अपनी कला प्रदर्शित करते हैं तथा दशहरे के पर्व पर झाँकियां प्रस्तुत करते हैं। इनमें अक्सर मूर्तियों के समान किसी एक भाव को स्थिर बना कर सामाजिक या पौराणिक कथायें प्रस्तुत की जाती हैं।

यह परंपरागत नाट्य शैली हरियाणा में अधिक लोकप्रिय है और ऐसा माना जाता है कि वहीं इसका विकास हुआ। इस नाट्य शैली में भी नौटंकी की भाँति नगाड़े और ढोल के नाद से कार्यक्रम की घोषणा होती है। जब दर्शक इकट्ठे हो जाते हैं, तो संगीत के साथ स्वांग शुरू होता है। शहनाई, सारंगी, हारमोनियम और मंजीरे के स्वरों के साथ गायक या गायकों की आवाज़ गूँजती है। संगीतकारों की वेशभूषा दशकों से वही चली आ रही है। स्वांग में कभी तो गायन के आधार पर कथा सुनायी जाती है, तो कभी नाटक के रूप में इसका प्रस्तुतीकरण होता है। स्वांग की विषयवस्तु अधिकतर पौराणिक या ऐतिहासिक होती है।

5. स्वांग

स्वांग में पौराणिक कथाओं के समावेश के बावजूद भक्तिभाव अत्यन्त अल्प मात्रा में पाया जाता है। प्राय: धार्मिक स्थलों के आसपास स्वांग की प्रस्तुति नहीं की जाती है। इस नाट्य शैली में वेशभूषा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। मुख्यत: दो पात्र ही स्वांग के विभिन्न दृश्यों में भूमिका निभाते हैं। सवाल-जवाब इन्हीं दो पात्रों में जारी रहता है। कई विशेषज्ञ मानते हैं कि स्वांग में कथानक पर ज्यादा ज़ोर नहीं दिया जाता। संवाद मुग्ध कर देने वाले होते हैं, जिनकी प्रस्तुति एवं गायन रोचक ढंग से किया जाता है।

6. स्वांग

स्वांग हंसी और मज़ाक से भरी नाट्यकला है, जो कि अधिकतर विवाहोत्सवों में कन्यापक्ष द्वारा प्रस्तुत की जाती है। इस में स्त्रियों की भूमिका भी प्राय: पुरुष ही निभाते आये हैं, जो कि पारंपरिक लोक कलाओं के अनिवार्य अंग जैसा ही है। स्वांग में वेशभूषा ठेठ हरियाणवी तथा विषयवस्तु सामाजिक मान्यताओं पर व्यंग्य के अतिरिक्त ऐतिहासिक भी होती है। भाव, मुद्रा, संवाद, गीत इत्यादि देहाती पृष्ठभूमि से जुड़े होने के नाते स्पष्ट और सरल होते हैं।

7. नौटंकी

नौटंकी, उत्तर भारत की एक प्रमुख पारंपरिक नाट्य शैली है। नौटंकी का आदि रूप 'सांगीत' के रूप में जाना जाता है। 'सांगीत' की अनेक छवियाँ रही हैं, जिनमें भगत, स्वांग तथा नौटंकी शामिल हैं। जयशंकर प्रसाद का मत है कि नौटंकी 'नाटकी' शब्द का अपभ्रंश है। डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि भरत के नाट्यशास्त्र में 'सट्टक' नाम से जिस नाट्य भेद का उल्लेख है, वह नौटंकी जैसा ही खेल था। अमृतलाल नागर का कहना है कि किसी युग में इसके प्रदर्शन का शुल्क 'नौ टक्का' रहा होगा, इसी से यह नौटंकी कहलाई। कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि नौटंकी विधा महज़ पैंसठ-सत्तर साल पुरानी है और यह नामकरण भी उतना ही पुराना है।

नौटंकी की प्रस्तुति में अधिकतर शृंगाररस की प्रधानता रहती है और इस तरह भगत, स्वांग, नकल से विकसित होती नौटंकी अपनी कथावस्तु में शृंगारिकता को समेटे रहती है। वर्तमान में, नौटंकी की प्रस्तुतियों में समकालीन घटनाओं को भी शामिल किया जाने लगा है।

नौटंकी अधिकांशत: सांगीतीय होती हैं। इसमें कव्वाली, ग़ज़ल, ठुमरी का भी असर देखा गया है। लोकशैली के दोहे, चौबोला, लावनी, माँड, नौटंकी लोकनाट्य के नाटकीय प्रसंगों, संवेदनाओं तथा संवादों को अर्थपूर्ण बनाने के उद्देश्य से अपनाए गए हैं। जाने आलम, भक्त पूरनमल, लालारुख, प्रेमकुमारी, आँखों का जादू आदि शृंगार-प्रधान कथानक पर आधारित प्रसिद्ध नौटंकियाँ हैं जिन पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। पंजाबी भाषा और अमीर खुसरो की भाषा का प्रभाव भी कहीं-कहीं दिख जाता है।

8. नौटंकी

नौटंकी की कानपुर, लखनऊ और हाथरस शैली मशहूर हैं। नौटंकी कला के विकास में अनेक प्रसिद्ध लोक नाट्य कलाकारों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। नौटंकी पारसी रंगमंच से भी प्रभावित हुई। जहाँ कानपुर शैली ने पर्दों का प्रयोग,

सहायक कथानक व गद्य संवाद प्रारंभ किया, उच्चारण की शुद्धता पर बल दिया एवं बहर-ए-तबील छंद का समावेश किया वहाँ लखनऊ शैली ने वेशभूषा व आधुनिक साज-सज्जा पर बल दिया। हाथरस शैली की गायन भँगिमा उल्लेखनीय है। जिन रचनाओं को अब भी प्रस्तुत किया जाता है, वे लोकशैली तथा उर्दू के प्रवाह का मिश्रण होती हैं। दोहे, चौबोला, छप्पय, बहर-ए-तबील छंदों आदि का प्रयोग इसकी विशेषता है। प्रारंभ में तो स्त्री-पात्रों की भूमिका भी पुरुष कलाकारों द्वारा ही की जाती थी, परन्तु बाद में स्त्री कलाकार भी पर्याप्त मात्रा में भाग लेने लगीं। आजकल, हरियाणा राज्य में स्थित रोहतक भी नौटंकी का विशेष केन्द्र बन गया है। सुल्ताना डाकू, वीर अभिमन्यु, राजा हरिश्चन्द्र, भरथरी, ऊदल का ब्याह, वाह री किस्मत आदि इस आंचलिक केन्द्र की प्रसिद्ध प्रस्तुतियाँ हैं।

इनके अतिरिक्त - मोरध्वज, सियाह पोश, लैला मजनू, शीरीं फरहाद, इन्दर सभा, आदि उर्दू कथाओं पर आधारित नौटंकियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं।

9. नौटंकी

नौटंकी के रंगमंच का स्थान थोड़ा ऊँचा बनाया जाता है। रंगमंच खुले होते हैं। पीछे की ओर आवश्यकतानुसार पर्दे लगाए जाते हैं। जिस किसी दृश्य की प्रस्तुति होती है, उसी के अनुकूल पीछे का पर्दा होता है। सबसे पहले मंच पर साजिन्दे आकर बैठते हैं। नगाड़े की ध्वनि से विशेष अनुगूँज होती है। देवी-देवताओं की स्तुति से कार्यक्रम आरंभ होता है। स्तुति प्राय: कोरस में होती है। शेर, चौबोले तथा दोहों में बातें शुरु होती हैं। सूत्रधार की विशेष भूमिका 'रंगा' द्वारा अभिनीत की जाती है। कथारंभ करने के साथ-साथ सूत्रधार रंगा अनेक नाटकीय घटनाओं को जोड़ता भी है। हालांकि गद्य और पद्य दोनों में संवाद होते हैं, फिर भी नौटंकी की पहचान पद्यमयता और सांगीतिकता से है। नक्कारे पर झूमते कलाकार लोगों के मन मोह लेते हैं। बीच-बीच में नृत्य होते रहने से मनोरंजन का पुट भरपूर होता है।

दोहा, चौबोला, दौड़, बहर-ए-तबील की धुनें - दृश्य वर्णन, संवाद और अभिव्यंजना के लिए प्रयोग की जाती हैं। गीत-अंश की समाप्ति पर टेक की धुन सारंगी, हारमोनियम और नगाड़े की ताल पर एक-दो बार बजाई जाती है - तिहाई पर उसकी समाप्ति होती है और आगे का गायन चलता है। नगाड़ा और टिकारी ही नौटंकी के मुख्य वाद्य कहे जा सकते हैं, जिनकी ध्वनि से नौटंकी की पहचान बनती है। इनकी सांगीतिक क्षमता इतनी गहरी है कि छंदों के हेर-फेर से नवरस विविध रूपों में बखूबी प्रस्तुत किए जा सकते हैं। नौटंकी की दृश्य योजना इतनी सशक्त है कि एक सिपाही को भी बिना मंच पर चढ़ाए लाखों की सेनाएँ निकाली जा सकती हैं, भयंकर से भयंकर घटना होती वर्णित की जा सकती है। दर्शकों को कुछ भी अस्वाभाविक नहीं लगता। अन्य लोकनाट्यों के समान नौटंकी में भी रूप-सज्जा यथार्थ से भिन्न होती है, किन्तु सामाजिक एवं समकालीन कथानकों में वास्तविक रूप-सज्जा अपनाई जाती है और चरित्र की आवश्यकतानुसार पगड़ी, टोपी, मुकुट, किरीट, दाढ़ी, मूँछ, विग सभी कुछ इस्तेमाल होते हैं। नौटंकी के विकास में उसके रचनाकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

10. रासलीला

विशेष तौर पर श्री कृष्ण की लीलाओं पर आधारित, रासलीला उत्तर प्रदेश की एक संगीतमय पारंपरिक लोकनाट्य शैली है। ईसा की पहली शताब्दी से कहीं पूर्व ही भारत में रासमंच की परंपराएँ विकसित थीं। आचार्य भरतमुनि ने लोकधर्मी रूपक की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है, रास उन से युक्त है। ब्रज के वर्तमान रासमंच पर, जहाँ नित्य रास में नृत्य और संगीत की प्रधानता है, वहाँ नित्य रास के बाद होने वाली श्री कृष्ण की ब्रजलीलाओं में नृत्य और गायन के साथ-साथ अभिनय भी महत्वपूर्ण हो उठता है। वर्तमान ब्रजरास में अभिनयतत्व के विकास का श्रेय श्री नारायण भट्ट को दिया जाता है। रासलीलाओं का श्रीगणेश गोचारण, कालियदमन, साँझी, दान और मान जैसी लीलाओं से हुआ। रास मंच पर ब्रज के वन, पर्वत, नदी, गोप, गाय, लोकजीवन का जीवंत प्रसंग अभिनीत होता है।

एक मत के अनुसार रास की उत्पत्ति अनुमानत: 'रस' से मानी गई है। कहा गया है कि रास एक वृत्ताकार नृत्य है, जिसमें 'शृंगार रस' प्रमुख है। पुराणों में रास का जो वर्णन है, उसमें शृंगार रस-निष्पत्ति के उद्दीपक तत्वों का भी उल्लेख है, जैसे - फूलों की सुगंधि, मधुर चाँदनी रात, सुहावना मौसम, आदि। किन्तु रासलीला में राधा कृष्ण की प्रणय संवेदना पूरी प्रस्तुति को एक आलौकिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर ले जाती है। रास चरम सीमा पर जा कर दर्शकों को आत्मविभोर कर देता है। मंगलाचरण, आरती, नृत्य, झाँकी तथा लीलाओं द्वारा पूरी प्रस्तुति एक नैसर्गिक भावना जगाती है।

11. रासलीला

रास में शारीरिक अभिनय को विशेष महत्व दिया जाता है। भाव के अनुरूप नेत्र-संचालन, पग-संचालन, भँगिमा आदि का विशेष महत्त्व है। विशेष भावों को व्यक्त करने के लिए रास में विशेष हस्त एवं मुख मुद्राओं का प्रयोग होता है। ये मुद्राएँ 'चलन, हलन और चितवन' से सम्बन्धित होती हैं। मुख-मुद्राओं में सबसे अधिक महत्त्व मुस्कान का है। कृष्ण और राधा की दिव्य मुस्कान ही आकर्षण का केन्द्र होती है। शृंगाररस के अनेक भाव नयनों से नयन जोड़कर तथा कटाक्षपात द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। रास में कृष्ण की 'त्रिभंगी' मुद्रा प्रसिद्ध है, जो बाएँ पग के पंजे को दाएँ पग की भूमि पर जमे हुए पंजे के आगे तिरछा रखकर, एड़ी को ऊपर उठाकर बनायी जाती है। इस मुद्रा में कमर के साथ गरदन को थोड़ी बायीं और झुका दिया जाता है तथा बाएँ और दाएँ दोनों ही हाथों को तिरछा करके, दायीं ओर ऊपर उठाकर उन्हें तिरछे करके उनसे मुरली अध रों पर रखकर उसे बजाने का अभिनय किया जाता है।

12. रासलीला

ब्रज क्षेत्र के रासमण्डल दो तरह के होते हैं - खुले हुए रासमण्डल तथा पटे हुए रासमण्डल। खुले रासमण्डल भूमि से लगभग दो फुट से लेकर चार फुट के क़रीब ऊँचे होते हैं, जो चूने की सहायता से बनाये जाते हैं। इनका व्यास दस गज होता है। ये प्रकृति की गोद में होते हैं। रूप-सज्जा के लिए चकली पर मुर्दासिन घिसकर उसका लेपन होता है, जिससे मुखमण्डल ललछौंह दिखता है। कृष्ण के माथे पर रोली, चंदन तथा राधा व गोपियों के मस्तक पर लम्बी बिंदियाँ लगायी जाती हैं। काजल तथा तिकोने मुकुट का भी प्रयोग होता है।

रासलीला की समग्रता पर ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि संगीत और नृत्य इसके व्यापक तत्व हैं। लीलाओं में अभिनय प्रमुख है। नित्य रास में कोई संवाद नहीं होता किन्तु गायन में अभिनय-संकेतों द्वारा गीत के भावों की व्याख्या की जाती है। रासलीला में संगति के लिए प्रयुक्त प्रमुख वाद्य हैं - हारमोनियम, झाँझ, मंजीरा, तबला, पखावज, तानपुरा, करताल। रास के संगीत पक्ष में आजकल शास्त्रीय संगीत की अनेक तालों का प्रयोग किया जा रहा है। शास्त्रीय नृत्य कथक के प्रभाव के कारण दल-प्रधान, ताल के बोलों का लयबद्ध उच्चारण करता है, जो पदविन्यास द्वारा घुँघरू की ध्वनि पर दुहराए जाते हैं।

रासलीला के पदों व गीतों का सर्वव्यापी आकर्षण देखा गया है। एक ओर तो उन्हें धार्मिक भावनाओं को जगाने के लिए तथा नैतिकता के उद्देश्य से प्रयोग किया गया, तो दूसरी ओर ऋतु संबंधी त्यौहारों, अनुष्ठानों या अन्य वांछनीय अवसरों पर भी रास के पदों व गीतों का उपयोग होता है। कुछ 'रासधारी' केवल कथा-बाँचने के उद्देश्य से रास के आकर्षक पदों व गीतों को गाते रहे हैं।

वर्तमान रासलीला धार्मिक एवं पौराणिक प्रस्तुतियों में पारसी रंगमंच की छाप उसकी वेशभूषा में देखी जा सकती है। राधा और कृष्ण की एक विशिष्ट वेशभूषा होती है तथा शेष सखियों की पृथक। वादकों को भी निर्धारित वेशभूषा में आना पड़ता है।

13. भवाई

भवाई गुजरात तथा राजस्थान की पारंपरिक नाट्य विधा है। गुजरात में यह नाट्य परंपरा विशेष रूप से कच्छ-काठियावाड़ क्षेत्र से जुड़ी कही जाती है। भवाई शब्द की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतभेद है। जहाँ विशेषज्ञ इसको भाव के वहन करने से जोड़ते हैं वहीं कुछ जानकार लोग इसका अर्थ शीतला (चेचक) से ग्रस्त लगाते हैं।

यद्यपि भवाई नवरात्र पर्व तथा अंबा देवी के मंदिरों में प्रस्तुत होता था, किन्तु बाद में भवाया समुदाय ने इसका व्यवसायीकरण किया तथा विभिन्न स्थलों पर इसकी प्रस्तुति करने लगे। माना गया है कि जयशंकर भेजक 'सुंदरी' ने इसे कलात्मक रूप दिया जबकि दीना गांधी और रसिक लाल पारिख ने भवाई में कुछ अभिनव परिवर्तन किए हैं। नए 'वेश' लिखे गए हैं। आधुनिक समय में 'मैना गुर्जरी' तथा 'जस्मा ओडण' के माध्यम से इसमें नयापन देखने को मिला तथा इसमें समकालीन प्रवृत्तियाँ भी उजागर होने लगीं।

ऐसा माना जाता है कि भवाई के जन्मदाता असिता या असाइता थे, जो गुजरात के मेहसाणा जिले के निवासी थे। राजस्थान में नागाजि को इसका प्रमुख व्यक्ति मानते हैं। दोनों कलाकार अपने-अपने समय व क्षेत्र में संगीत और नृत्य के प्रेमी थे तथा अपने सांगीतिक प्रेम के कारण इन्हें समाज में अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं। प्रारम्भ में इसका मंचन जन साधारण की भक्ति-भावना जगाने के उद्देश्य से किया जाता था। बाद में इसमें ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, रूमानी प्रकरण जुड़ने लगे। एक दूसरे से स्वतंत्र अनेक प्रसंगों को एक पूर्व नियोजित क्रम में जोड़ कर भवाई का 'वेश' तैयार किया जाता है। एक प्रसंग पंद्रह मिनट से साठ मिनट तक की अवधि का हो सकता है।

14. भवाई

मंदिर के निकट या खुले स्थान पर भवाई आयोजन नवरात्र पर्व के अंग के रूप में किया जाता है। मंडप को खजूर के पत्तों, फूलों से सजाया जाता है। गोटे पट्टे लगाकर भी सजावट की जाती है तथा दीवारों को अलंकृत किया जाता है। चारों कोनों पर परदे खंभों पर टाँग दिये जाते हैं। गरबी, अर्थात् - मिट्टी का घड़ा या मांडवी शक्ति को समाधि के प्रतीक के रूप में रखा जाता है। संगतकार एक तरफ बैठते हैं। भवाई अभिनेता पहले गरबी को प्रणाम करता है तथा अंबा देवी से आशीष की कामना करता है।

भवाई कलाकार को 'कंचालिया' नाम दिया गया है। हास्य-कलाकार को 'रंगलो' कहते हैं। 'झूठे मियाँ', 'चटकी-मटकी', 'काजोरा मखदान', 'तेज सेठानी' भवाई के लोकप्रिय प्रहसन रहे हैं। कलाकारों के प्रवेश और प्रस्थान के साथ 'भुंगल' नामक एक तांबे का सुषिर वाद्य बजाया जाता है। तबला, ढोलक, बाँसुरी, पखावज, हारमोनियम, सारंगी, मंजीरा भवाई के अन्य वाद्य हैं। नृत्य का प्रयोग नाटकीयता का पुट देने के लिए किया जाता है। संवादों को अतिरिक्त बल देने के लिए इसे सामूहिक रूप से भी गाया जाता है, जिसमें सभी कलाकार भाग लेते हैं।

15. भवाई

भवाई में दोहा, चौपाई, गीत तथा गद्य के अंशों का प्रयोग किया जाता है। बीच-बीच में नायक के बोल, उसका गायन और उसकी टीका-टिप्पणी होते हैं। चरित्र के प्रवेश या विकास से सम्बद्ध नाटकीय संरचना या गायन आदि में भवाई, सामान्य पद्धति का ही अनुसरण करता है। वर्णन-पद्धति कलाओं से ली गयी हैं। गायन-शैलियाँ संगीत नाटकों से ग्रहण की गयी हैं तथा स्वच्छ गीतात्मकता साहित्यिक परंपरा के रसिकों की देन है। 'जस्मा ओडन', 'रामदेव', 'जयसिंह' आदि इसके परंपरागत कथ्य हैं। पगड़ी, ढीला-ढाला पायजामा, कमीज़ आदि इसकी पोशाकें हैं। रूप-सज्जा के लिए गुलाल, हल्दी, गेरू, कुमकुम, शंख जिरू, केसर, गोंद, चंदन तथा चावल के आटे का उपयोग होता है। दाढ़ी, मूँछ तथा केश आदि का भी चरित्र की माँग को देखते हुए इस्तेमाल किया जाता है।

16. जात्रा

जात्रा बंगाल और उड़ीसा की प्रमुख पारंपरिक नाट्यविधाओं में से एक है जो कि लगभग एक हज़ार वर्ष पुरानी है। जात्रा, संगीत प्रधान नाट्य है। पात्रों का सुरीला कण्ठ होना आवश्यक है। गायकों के सामूहिक गीत पर मृदंग वादन के साथ अभिनय किया जाता है। मंच खुली हुई ऊँची भूमि या ऊँचे चबूतरे पर बना होता है। गायक चोगा पहनकर मंच पर उतरते हैं। पौराणिक नाटकों में जैसे नन्दी पाठ होता था, उसी तरह जात्रा में गौरचंद्रिका का गायन होता है। प्रारंभिक जात्राओं में नलदमयंती जात्रा तथा विद्या सुन्दर जात्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। भक्तगण मंडलियाँ बनाकर अपने आराध्यदेव की लीलाएँ करते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाया करते थे, यही यात्रा बंगाल और उड़ीसा क्षेत्र में 'जात्रा' कहलायी। इस पर कृष्ण भक्ति आंदोलन का भी प्रभाव पड़ा। बाद में पौराणिक

कथाओं के साथ-साथ समकालीन विडंबनाओं तथा प्रेमकथाओं का भी समावेश होने लगा।

इस नाट्य शैली को 'जात्रा गान' की संज्ञा भी दी गई है, क्योंकि संवाद और एकालाप के अतिरिक्त कविगान इस नाट्य विधा में एक प्रमुख अंग है। कविगान के साथ-साथ पांचाली (काव्य), कथकता (व्याख्या), टप्पा, कीर्तन (खोल और करताल पर गाए जाने वाले संकीर्तन) जात्रा के अन्य अंग हैं। गायकों की मंडली (जुड़ी) के पीछे से मुख्य गायक वायलिन बजाता है तथा आवश्यक निर्देश देता है।

समय बीतने के साथ-साथ अब सामाजिक, ऐतिहासिक, समकालीन व आधुनिक विषयों को केन्द्र में रख कर जात्रा का सृजन किया जाता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टाकुर ने जात्रा परम्परा के अंतर्गत वाल्मीकि प्रतिभा और मायार खेला नाटकों की रचना की है।

17. जात्रा

जात्रा के कलाकार अधिकतर पुरुष होते हैं तथा नारी-भूमिकाएँ भी वही निभाते हैं। नारी भूमिकाएँ निभाने वाले अपने नाम के आगे रानी शब्द जोड़ लेते हैं, जिससे उन्हें पुरुष-भूमिका निभाने वालों से अलग किया जा सके। कलाकारों की वेशभूषा पर अनेक कालखण्डों का प्रभाव दिखता है। यह आवश्यक नहीं कि ये पोशाकें वास्तविक जीवन से सम्बद्ध हों। रूपसज्जा में प्राकृतिक रंग, रासायनिक रंग, काजल, सफेद सीसा, लाल रोग़न इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।

पूर्ववर्ती काल में ज़िंक के साथ नारियल तेल में प्राकृतिक रंगों को मिला कर रूप-सज्जा की जाती थी। अब मेकअप ट्यूब, काजल, आई ब्रो पेन्सिल, सिन्दूर, लिप्स्टिक, क्रेप का प्रयोग किया जाता है।

वेशभूषा परंपरागत और लगभग निर्धारित होती है – अधिकतर लाल, पीले, गुलाबी, नीले रंगों के वस्त्र धारण किए जाते हैं। चमड़े के कपड़े खलनायकों के लिए सुरक्षित किए गए हैं।

18. जात्रा

जात्रा में नृत्य नाटक या ऑपेरा की अपेक्षा नाटक अधिक है। समय के साथ-साथ इसके स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। आज जात्रा का संगठनात्मक ढाँचा व्यापारिक हो चुका है। इसमें सूत्रधार जैसा कोई चरित्र अब देखने को नहीं मिलता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में माथुरशाह ने इसमें 'विवेक' का चरित्र जोड़ दिया था। विवेक का चरित्र नाटक को आगे बढ़ाने, अनिष्ट की पूर्व-सूचना देने तथा अधम चरित्रों को उनकी करनी के प्रति आगाह करने का धर्म निभाता है। आज समकालीन विषयों पर भी जात्रा नाटक होते हैं। इस पारंपरिक नाट्य विधा ने हर वर्ग तथा व्यवसाय के लोगों को आकृष्ट किया है। श्याम कल्याण, विहाग, पूरबी आदि रागों पर आधारित गीत एवं धुनों के माध्यम से जात्रा ने अपनी परंपरागत छवि बनाये रखी है।

जात्रा में सांकेतिक संगीत पूर्व निर्धारित होता है - पूर्व रंग, युद्ध के दृश्य, लम्बे संवाद, प्रणय, निर्वहण, आदि सभी अवसरों पर संगीत निश्चित रहता है। तबला, ढोल, शहनाई, क्लेरेनेट, वायलिन, करताल, बाँसुरी और गिटार प्रयुक्त होने वाले प्रमुख वाद्य हैं।

19. माच

माच, मध्य प्रदेश के मालवा और उसके आस-पास के क्षेत्रों में एक अत्यन्त लोकप्रिय नाट्यशैली है। संगीत का जहाँ तक प्रश्न है, यह राजस्थान की ख़्याल शैली और उत्तर प्रदेश की नौटंकी से कुछ समानता रखता है। माच की अपनी छाप और पहचान कविता और छंद से भी बनती है। मालवा में प्रचलित माच के पहले प्रवर्तक बालमुकुन्द गुरु माने जाते हैं जो उज्जैन के रहने वाले थे, इन्होंने माच के सोलह खेल लिखे हैं, उनमें वह खुद मुख्य पात्र का अभिनय भी करते थे। इन सोलह रचनाओं की मूल प्रतियां गुरुजी के सगे सम्बन्धियों के पास आज भी सुरक्षित हैं।

माच की उत्पत्ति 'मंच' शब्द से हुई मानी जाती है। माच, अर्थात् मंच जो अक्सर किसी खुली जगह में तैयार किया जाता है। माच शुरु करने से एक सप्ताह पहले किसी खुली जगह में 'माच' का खम्ब यानी खम्भा गाढ़ा जाता है। उसके आसपास माच-मंडली के कलाकार इकट्ठे होते हैं और अपने गुरु के हाथों से खम्ब की पूजा करवाते हैं। मंच खम्भों पर पाँच फुट से लेकर दस फुट तक ऊँचा बनाया जाता है ऊपर बल्लियों के सहारे सफेद चादर तान दी जाती है और उसमें रंग-बिरंगे कागजों के फूल गोंद से चिपकाए जाते हैं। माच मंच में रंगशाला का कोई स्थान नहीं होता। सभी पात्र मंच के पास ही अपने वस्त्रादि बदल कर आते हैं। सुविधा की दृष्टि से दर्शकों को मंच के तीन ओर ही बैठने दिया जाता है। मंच पर तीन ओर से नाटक का प्रस्तुतीकरण होता है।

प्रारंभिक अवस्था में मंच के चारों ओर खंभे खड़े किये जाते थे, जिन्हें छतरी से ढाँप दिया जाता है। अब अन्य मंचों की भाँति इसके भी पीछे पर्दा होता है।

20. माच

माच लोक नाट्य शैली में मंच-सज्जा की अपनी ही विशेषता है। राजमहल के वैभव को दर्शाने के लिए दो ऊँचे ढाँचे होते हैं, जिनके बीच में, नीचे की ओर मंच बना होता है। मंच के एक ओर बड़ा घड़ा होता है और दूसरी ओर पहरेदार के लिए विशेष स्थान। एक झरोखा होता है, जहाँ बादशाह, पहरेदार और लगभग सोलह अन्य पात्र होते हैं। बादशाह के लिये ही बैठने की व्यवस्था की जाती है। और संभवत: राजमहल की शान-ओ-शौकत को दर्शाने ही के लिये यह परंपरा विकसित हुई होगी। यह सब नाटक को प्रभावशाली बनाने के लिए किया जाता है। प्रारम्भिक समय में इसमें पौराणिक कथाओं का मंचन होता था परन्तु बाद में, इसी परिसीमा में कथावस्तु की दृष्टि से उपलब्ध मान्य साहित्य में प्रेम कथानक, ऐतिहासिक और लोक कथात्मक विषयों का भी समावेश हुआ।

माच नाट्य शैली के तीन महत्वपूर्ण पात्र : चोबदार (गदाधारी, जिसकी भूमिका सूत्रधार की है), भिश्ती (जो नाट्यारंभ के पहले मंच पर पानी छिड़कता है) और फर्राश (जो मंच पर कालीन बिछाता है) हैं, जिनके बिना मंचन असंभव है। अन्य परंपरागत नाट्यशैलियों की भांति माच में भी विदूषक की अपनी भूमिका तथा अपना ही महत्व है। माच के कलाकार विनम्र होते हैं व दर्शकों से परिचित होते हैं।

21. माच

माच के संगीत में ढोलक मुख्य वाद्य है। सारंगी उसकी साथिन है। ढोलक और सारंगी के साथ-साथ नगाड़े का नाद भी गूँजता है। गति को बनाये रखने या गति को बढ़ाने के लिए ताल का विशेष महत्व है। छंदबद्ध संवाद में लय को बनाये रखने के लिये, तालवाद्य का विशेष महत्व है। इस नाट्य शैली में नृत्य की विशेष भूमिका है। ढोलक की थाप और सारंगी की मीड़ो (संवाद) की लयकारी दर्शकों में झूम पैदा करती है और दर्शकगण बोल के कौशल पर 'कई की है' (क्या कही है) कहकर झूम उठते हैं।

साज-सज्जा भड़कीली होती है। वेशभूषा में गोटे का काम खूब होता है। अब इस नाट्यशैली में सामाजिक वस्तुस्थितियों की भूमिका है, इसीलिए साज-सज्जा औार वेशभूषा में सामान्य जीवन की झलक भी मिलती है।

22. अंकिआ-नाट और भाओना

अंकिआ-नाट असम की पारंपरिक नाट्यशैली है। इसके प्रस्तुतीकरण को 'भाओना' कहा जाता है, जिसका मूल 'भाओलोआ' है एवं इसका अर्थ होता है - 'भावों को अभिनय द्वारा प्रकट करना'। असम में कतिपय सत्रों (मठों) में अंकिआ-नाट की प्रस्तुति की परंपरा कायम है। इसका स्रोत शंकरदेव का व्यक्तित्व रहा है। इस नाट्यशैली में असम के अलावा बंगाल, उड़ीसा तथा वृंदावन-मथुरा इत्यादि की सांस्कृतिक झलक मिल जाती है। इस शैली के नाटकों की भाषा को ब्रज बोली कहते हैं, जिसमें अनेक भाषाओं का मिश्रण था तथा जिसका प्रयोग थोड़े बहुत अंतर के साथ बंगाल, बिहार व उड़ीसा में भी किया जाता था।

वैष्णव धर्म से प्रभावित होने के कारण अंकिआ-नाट के कथानक में कृष्ण-लीला तथा रामायण के प्रसंग मुख्य आधार रहे हैं। जन्माष्टमी, नंदोत्सव, ढोलयात्रा, रासपूर्णिमा, इत्यादि अवसरों पर इनका प्रदर्शन होता रहा है। बाद में इनके अत्याधिक लोकप्रिय होने पर अन्य अवसरों पर भी इन्हें प्रस्तुत किया जाने लगा। जिन दिनों किसान खेती के काम से फुर्सत पाता है, उन दिनों अंकिआ-नाटों का प्रदर्शन उपयुक्त माना जाता है। अंकिआ-नाट विधा में संस्कृत तथा असमिया नाट्य परंपराओं दोनों का एक अद्भुत मिश्रण देखा जा सकता है। सूत्रधार, अंकिआ-नाट में दो भाषा-बोलियों में, पहले संस्कृत में एवं बाद में ब्रजबोली अथवा असमिया में अपने भावों को प्रकट करता है।

23. अंकिआ-नाट और भाओना

सत्र में जिस स्थान पर भाओना प्रस्तुत किया जाता है, उसे भाओना घर कहते हैं। भाओना घर रूपी मण्डप लगभग 90 मीटर लम्बा तथा 15 मीटर चौड़ा होता है। मण्डप के चारों ओर किसी तरह की दीवार अथवा पर्दा नहीं होता, इसलिए बैठकर या खड़े होकर बड़ी संख्या में जनता प्रदर्शन देख सकती है। इस आयताकार मण्डप के एक छोर पर थापना (सिंहासन या मणिकूट) रखी जाती है। मण्डप के दूसरे छोर पर संगीत मण्डली का स्थान होता है। इस मण्डली को 'गायन-बायन' कहा जाता है। मृदंग, रेहरी-गोमुख, करताल, बड़ा झाँझ या मंजीरा इस शैली में प्रयुक्त होने वाले संगीत वाद्य हैं। मण्डप से थोड़ी दूर पर 'छतर' होता है, जिसको छद्म गृह या सज्जा गृह कह सकते हैं। मण्डप लकड़ी और बाँस के स्तम्भों पर खड़ा होता है। उसकी छत दुहरी होती है - एक तो लोहे की चादरों की, दूसरी भूसे की।

अन्य लोक नाट्यों की भाँति भाओना की प्रस्तुति भी पूर्वरंग द्वारा आरम्भ होती है, जिसे 'धेमाल' कहते हैं। इसके बाद सूत्रधार का प्रवेश, उसका अभिनीत हुए नाट्य की कथावस्तु का परिचय देना, चरित्रों से दर्शकों को परिचित कराना - ये सारे क्रियाकलाप संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना के लोक स्वरूप हैं। मुख्य नायक के प्रवेश के साथ प्रवेशगीत गाने का भी प्रचलन है। इसके बाद एक सफ़ेद चादर खींच कर पूर्वरंग की समाप्ति की सूचना, शेष चरित्रों का प्रवेश तथा स्वपरिचय इत्यादि के द्वारा इस नाट्य शैली के सभी नियमों का यथोचित पालन किया जाता है।

24. अंकिआ-नाट और भाओना

भाओना में शुद्ध नृत्य और स्वांग दोनों पाये जाते हैं। बड़े नाटकों को 'नाट' एवं छोटे नाटकों को 'झुमुरा' कहते हैं। झुमुरा अधिकतर माधवदेव की रचनाएँ हैं। झुमुरा का प्रदर्शन दोपहर से पूरी रात चलता रहता है और प्रात: मुक्ति मंगल के अनुष्ठान के साथ समाप्त होता है। कभी-कभी कई गाँव मिलकर लगातार कई दिनों तक भाओना प्रदर्शन करवाते रहते हैं। इस तरह के प्रदर्शनों को बड़ा खेलिया भाओना कहते हैं।

भाओना में स्त्री पात्रों का अभिनय पुरुष कलाकार ही करते हैं, जिनकी वेशभूषा स्त्रियोचित और सुरुचिपूर्ण होती है। साड़ी या मेखला के साथ कृत्रिम केश का प्रयोग किया जाता है। कुछ पात्रों के चरित्र की अपेक्षाओं को ध्यान में रख कर टेराकोटा अथवा बाँस के मुखौटे पहनाए जाते हैं, जिन्हें लाल, पीले, नीले, काले रंगों द्वारा उभारा-सँवारा जाता है।

अंकिआ-नाट के नाटकों को असमी साहित्य में पूरी मान्यता प्राप्त है। अन्य साहित्यिक कृतियों की भाँति इन नाटकों का विशिष्ट स्थान है। नाटकों को अंकों, दृश्यों या प्रसंगों में नहीं बाँटा जाता, बल्कि कथावस्तु के निरंतर प्रवाह के द्वारा नाट्य प्रस्तुति खंडित हुए बिना चलती रहती है। नृत्य, गीत, अभिनय की प्रक्रियाओं के साथ गद्य का प्रयोग भी होता रहता है।

भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियाँ

Traditional Theatre Forms of India

1

1. Bhand Pather

Bhand theatre based on social satire is popular in Northern India - specially in Kashmir and Punjab. The literal meaning of Bhand in Hindi is jester i.e. a professional joker. Pather means a play in the repertoire of the traditional Bhand theatre of the Kashmir. Although there is no special mention of the folk plays in Sanskrit literature, but there are few which are known as *Samvakar, Vyayog, Prahasan, Bhan* and *Sattak*. It is quite possible that the term *Bhand* could have been derived from Bhan, which is popular as '*Bhand-Bhandaity*'. Bhand Pather of Kashmir, is a unique combination of dance, music and drama where satire, wit and parody are preferred for inducing laughter. The group of artists – dancers, singers, actors involved in this form of theatre are called Bhands. It is believed that Sadaf Bhand was a descendent of court musician and a pioneer of the Bhand theatre.

2. Bhand Pather

In 15th century A.D., during the reign of Sultan Zain-ul-Abidin, the theatre and performing artists were patronised and the performance was staged in Royal Courts. It is believed that the rulers of Kashmir Ali Shah and Hasan Shah also invited Carnatic musicians. With the passage of time, performances could not be staged in Royal Courts, still folk arts flourished. Bhands travelled extensively in the countryside also, entertaining and educating the masses and the classes alike, thus retaining the essence and the skills.

Bhands belong to the community of farmers. During the harvest season in May and June, they are rewarded with paddy, clothes and money for entertaining people. Gods and goddesses are reverred by Bhands through their performances. Such performances are termed as '*Bhand-Jashn*'. Apart from worship of gods and goddesses, 'the *Jashn*' is full of satire, wit and parody. Whenever the Bhands perform, they imitate one and all like barber, *safaiwallah*, priest, peasant, king, cook, boatman etc. Imitating others is the significant feature of Bhand Pather. Imitating and ridiculing the kings and elite alike is a speciality of this art form.

3. Bhand Pather

The performances in Bhand Pather do not follow a written script. The story progresses with the usage of dance, hand gestures and facial expressions interspersed with comical and satirical vocal passages. The repertoire consists of two actors, two male artists playing female characters two *surnai* (an aerophone - very similar to *Shehnai)* players, two drummers and one *nagara* (a type of kettle drum) player. The different actors of the play make their entry while sitting in the audience. The costumes and make-up conforms to Kashmiri traditions.

One of the traditional Pathers is *Shikaargaa* which is a satire based on the story of hunters who go to a forest for hunting deer. They claim to have killed a tiger which was killed by a genuine hunter. *Shikaargaa* is the only Pather in which masks are used to portray animal characters. In the picture, two actors with the masks of deer and tiger can be seen.

4. Swang

Swang, is a folk-theatre form of Haryana and Punjab. It is similar to Nautanki, traditional theatre form of Uttar Pradesh. As far as thematic content, dramatic structure and theatre techniques are concerned the literal meaning of Swang is to camouflage oneself with costumes and make-up in order to impersonate the designated characters. *Bahurupias* also practised Swang to earn their livelihood. On the occasion of Holi festival, Swang artists move around in small groups displaying their art and during Dusshera festival, they are part of various tableaux. Usually social or mythological stories are presented through sculpture like images in these processions.

This traditional theatre form is more popular in Haryana and it is also believed that art form flourished more in this region. As soon as the audience gathers, the Swang performance begins with musical presentations. The solo or group singing is accompanied by *nagara, dholak, shehnai, sarangi,* harmonium and cymbal players dressed in traditional costumes. As in Nautanki, in Swang also, the *nagara* and drums are played to herald the beginning of the performance. The range of Swang performance is from the ballad singing to the dramatics based on theme of historical events.

5. Swang

The Swang theatre is a radical departure from the devotional aspects prevalent in traditional theatre forms of India. The Swang is generally not performed near the houses of worship. A special emphasis is laid on traditional costumes. Mainly two actors enact various scenes in Swang. The dialogue continues with the question-answer sessions between these two actors. Some scholars are of the view that much stress is not laid on theme in the Swang. The dialogues are captivating and presented in a lucid manner.

6. Swang

Swang is a humorous and comical theatre form which is mostly presented by the bride's side during marriages. As a general convention, the female roles are also enacted by male artists, as is the practice prevalent in other performing folk art forms. The artists wear the traditional costumes of Haryana and the themes of Swang are related to historical episodes in addition to ridiculing social orthodoxy. Expressions, gestures, dialogues, songs used in Swang are simple and clear as they convey the essence of rural life.

7. Nautanki

Nautanki is one of the most popular traditional theatre forms of North India. As the term Nautanki itself suggests, the basis of this form of entertainment is *Naatak* (play). It is believed, that the original form of Nautanki was also known as *Saangeet*, a theatre form with many facets including *Bhagat, Swang*, and *Nautanki*. The renowned Hindi litterateur, Jayashankar Prasad believed that the term Nautanki itself was just a local, dialectical variation of the classical term *Naataki*. Dr. Hazari Prasad Dwivedi an erudite scholar and writer maintained that India's first aesthete, Bharata, the codifier of *Natya Shastra* has given details about the theatre form *Sattak*, which was similar to Nautanki. The famous author of Hindi Amritlal Nagar, on the other hand opined, that in the times gone by, at some stage there could have been an entry fee of *nau takas*, or nine coins for the Nautanki, and hence the name. Few other scholars, suggest that Nautanki, with the same name is merely sixty-five to seventy years old.

Nautanki, as a form developed from other traditional theatre forms like *Bhagat, Swang, Nakal*, with romanticism as its driving force, has its mainstay in most of its presentations. Contemporary situations are also being included in its repertoire now a-days.

Nautanki presentations are musical influenced by *Quawwali, Ghazal* and *Thumri. Doha, Chaubola, Laavani, Maand* forms of folk music have been embedded to impart a new dimension to the scenes of suffering, sympathy, agony in Nautanki presentations. *Jaan-e-Aalam, Bhakt Puranmal, Lala Rukh, Prem Kumari, Ankhon ka jaadu* etc. are some of popular Nautanki presentations enriched with romanticism and Braj dialect. Some traces of Punjabi, and the language used by Amir Khusuro can also be seen.

8. Nautanki

Nautanki presentation of Kanpur, Lucknow and Hathras are famous because of their distinctive styles. Many famous folk artists have contributed significantly for the professional development of this art form. Parsi theatre also influenced this traditional theatre form. The Kanpur style introduced the usage of curtains, sub-themes and dialogue delivery with emphasis on accent and pronounciation, enriched with the use of the meteric form of *Behar-e-tabeel*. The stylized presentations in Lucknow, on the other hand, stressed on costumes and modern make-up techniques. The unique features of Hathras style of Nautanki is the emphasis on songs and gestures. In this tradition, the language being used is still a mixture of local dialect and Urdu. Its uniqueness lies in the use of *Doha, Chaubola, Chhappai* and *Behar-e-tabeel*. In the beginning, the

men used to enact female roles but later on, women too, proved their talents on the stage. The region of Rohtak in the state of Haryana has emerged as a leading centre of Nautanki. *Sultana Daku, Veer Abhimanyu, Raja Harishchandra, Bharthari, Udal ka byaah, Vaah ri kismat* are some of the famous Nautankis presented in this region.

Apart from these, the Nautankis based on Urdu literary works, like *Mordhwaj, Siyaah posh, Laila Majnu, Shirin Farhad, Inder Sabha*, etc. also form the repertory of this theatre form.

9. Nautanki

Nautanki is staged on an open, raised platform. At times, the stage has backdrops as per the requirement. The backdrop depicted is connected with the scene and accordingly the backdrop is often changed. The accompanying musicians occupy the stage first. The *nagaara* player creates the ambience of the beginning of the presentation by playing the instrument. The performance begins with an invocation in chorus and the blessings of the divine beings are sought. The dialogues composed in *Doha, Chaubola* and *Sher* herald the actual commencement of the presentation. The most important role of narrator is played by the Ranga, who begins the story to be presented. The Ranga connects the various episodes of the play. Although the dialogue is in prose as well as in verse, Nautanki is treasured because of the rhymed dialogues and their musical compositions. The actors swinging to the rhythm of the percussionists, dance sequences and the music hold the audience spellbound.

It is for the scenic description, dialogue and details of the totality, that the *Doha, Chaubola, Daur, Behar-e-tabeel* meteric compositions are used. When a song sequence is over, the basic tune is played on the *Saarangi* and the harmonium, to which rhythmic pattern is provided on the *nagaara*. The *tihai* or the third repetition, makes the end of the sequence clear and the second music composition takes off from this point. The most important instruments of Nautanki are the *nagaara* and *tikaari*. They have such a profound musical effect that nothing seems impossible to the onlooker. Navrasa in different hues and colours are presented with different permutations and combinations of musical compositions. The descriptive details seems to be so realistic as if virtual war engaging millions of soldiers is being fought without showing even a single soldier on to the stage. For that matter even most horrible incidents can be staged accordingly as if happening actually. Like in other forms of folk theatre, costume and make-up techniques are highly stylised in Nautanki also. With time, however, some changes have taken place as far as costumes and make-up techniques are concerned. These are nearer to life, to reality, to surroundings. Depending on the characters and times dealt with, headdresses are turbans, crowns, head gears with ornaments, beards, moustaches, wigs and so on. Many composers have contributed significantly in the holistic development of Nautanki.

10. Raasleela

Based exclusively on Krishna legend, Raasleela is highly musical traditional theatre form of Uttar Pradesh. The tradition of Raasleela is older than the beginning of the Christian era. Raas comprises all the characteristics of a folk art play mentioned by India's most ancient aesthete and codifier of arts, Sage Bharata. In Braj, this theatre form has developed from a narrative form, with song and dance as base, to a form which includes acting, alongwith music and dance. It is believed that this dimension to traditional Raasleela was brought in by Shri Narayan Bhatt. Down the ages, Raasleela began with the thematic episodes like *Gocharan, Kaliyadaman, Saanjhi, Daan* and *Maan*, etc. During the Raasleela, the lively details of the forests, mountains, rivers, cowherds, cattle, life in pastoral surroundings are enacted.

It is believed that Raas originated and developed from *ras* – an emotion or aesthetic experience. Originally, Raas was dance movements in circles, with emphasis on love, *Shringaar ras*. In the Puranas, there is a description of the Raas, which includes the depiction of scenes which are vivid. These selfless devotional love scenes lay emphasis on the fragrance of flowers, moonlit nights, pleasant weather conditions and so on. But, Raasleela itself has been inspired by the divine love of Radha and Krishna, and sentiments associated with love and separation. At its climax, Raasleela presentations uplift the audience to such an extent that they get totally immersed in the devotional love of Radha and Krishna.

Invocation, adoration, dance, and the lively depiction of Krishna's pranks evoke in the audience a feeling of natural reverence.

11. Raasleela

In this dance form body movements and facial expressions play a very important role in expressing the emotions. There are certain postures and gestures which symbolize special, unique feelings and emotions. These gestures and postures are related to *Chalan, Halan* and *Chitvan*. In the facial expressions associated with this dance form, the smile is the most significant. The texts dealing with the legends of Radha and Krishna mention the smile again and again. The emotion of love is depicted in this dance form through the eyes. They seem to merge into one at times, and at times, they merely give an indication of love. The smile of the divine lovers are like treasures suddenly discovered. In *Raas*, it is Krishna's *Tribhangi*, or division of the body into three parts, or sections, which is important. It is the perfected art of placing the left foot, balanced on the toes, in front of the right foot, placed firmly on the ground. The left heel is raised gradually. The waist and the neck are tilted towards the left. The hands are raised to an angle, giving the impression of Radha and Krishna playing the flute.

12. Raasleela

In Braj, there are two schools of Raasleela, the open *Raasmandal* and the *pataa Raasmandal*. In the first kind, there is a stage approximately four feet above the ground, whitewashed. The area of the stage is bigger, about ten yards. It seems, that the performance is nature-oriented. Traditional colouring agents are used for the face, which seems to glow red. Krishna's forehead is decorated with *roli*, sandal paste, to give him a distinct personality, other than the *Gopas*, the cowherds, his friends. Radha and the *Gopis*, the women of Braj, who are her friends and Krishna's devotees, have bindis on their foreheads, a practice continued down the ages. Krishna also wears a triangular crown and collyrium in his eyes.

The music and dance of Raasleela, has been the mainstay of this theatre form down the ages. There is no dialogue as such. But, song and gesture give the impression of a dialogue. The instruments used for the music in Raasleela are harmonium, *jhaanjh, manjeera, tabla, pakhawaj, tanpura* and *kartaal*. When the chief singer introduces rhythmic syllables, *bols* during the narration, the ankle bells, *ghunghroos* are also jingled, to produce the effect of dance. Because of the influence of Kathak dance form, the chief singer introduces the *bols* or sound-patterns of rhythms, used mainly by percussionists otherwise, except in certain musical forms like the *Taraana*.

The lyrics and rhymes of this dance-drama are its main props. The audience has gone into raptures down the ages because of the songs of Raasleela which are full of joy, love, separation and emotions. On the one hand these songs have been sung to evoke religious feelings, faith and build ethics among the common people and on the other hand they have been sung on festive occasions while observing rituals of other appropriate events. Some of the singers of *Raas* have given preference to the more attractive couplets to make the art popular. Jayadev, Surdas, Nandadas, Paramanandadas, Lalita Kishori, etc. are some of the eminent poets who have been closely associated with this theatre form.

The influence of Parsee theatre technique on current Raasleela can be seen in the kind of costumes worn by the artists. Radha and Krishna are dressed in a way, that bears not much resemblance to the costumes of the other cowherds and maidens of Braj. Now-a-days, even the musicians of Raasleela have distinct costumes.

13. Bhavai

Bhavai is a traditional theatre form of Gujarat and Rajasthan. Bhavai is supposed to have deep roots in Kutch and Kathiawar in Gujarat. The term 'Bhavai' itself continues to be the cause of controversy among scholars. There are those who believe that the term refers to the firm grip of the goddess causing and controlling the dreaded small pox, while others maintain, that the term Bhavai means the flow of emotions.

Bhavai originated as a prayer offered to the Goddess Amba, during the *Navratra* festival. Later on, however, the Bhavaya sect started presenting Bhavai on other occasions as well, as a means of entertainment. The name mentioned with love and reverence for giving this theatre form artistic touches, aesthetic appeal is that of Jayashankar Bhojak 'Sundari'. Names associated with the new elements introduced in this theatre form are : Deena Gandhi and Rasik Lal Parikh.

There are also some new themes associated with this form, now. With "Maina Gurjari" and "Jasma Odan" the new elements were incorporated into this form, bringing it at par with other contemporary theatre forms.

It is believed that the creator of this form of entertainment was Asita, or Asaita, belonging to the Mehsana district of Gujarat. In Rajasthan, Nagaji has been closely associated with theatre form of Bhavai. It is said that Nagaji's love of music and dance caused him a lot of trouble.

In the beginning, this theatre form was used to rouse religious sentiments and devotional attitudes in the people. With time, this theatre form included in its framework historical, mythological, social and romantic themes. Bhavai is a presentation of several themes, unconnected with each other but put together in a planned manner. Each performance lasts from fifteen minutes to an hour.

14. Bhavai

Bhavai is performed as a celebration during the nine nights of festivity, the *Navratra*, usually near a temple. Bhavai is presented in a circular arena and the audience sit all around. The pavilion for the staging of the show is decorated with leaves of the date palms, flowers with silver-lined banners at times. The walls are also decorated. The four pillars of the pavilion are draped with curtains. A *garbi*, or earthen pot or *maandvi* is placed with reverence, as a symbolic homage to the Goddess.

The musicians sit on one side. All the actors generally are males. The female roles initially were played by male actors. The actors first make their obeisance to the Goddess, Amba Devi, seeking her blessings. The Bhavai actors are known as *Kanchaalia*. Comedian is known as *Ranglo*. The favourite comedians of this theatre form are : Jhoothe Mian, Chatki-Matki, Kajora Makhdan, Tej Sethani, etc. As the actors make their entry or exit, wind instrument *Bhungal* made of copper is played. The music of this theatre draws heavily from the rich and varied folk music of the state. The instruments commonly used are *tabla, dholak*, flute, *pakhawaj*, harmonium, *sarangi* and *manjeera*. Dance sequences are introduced mainly for dramatic effect. The delivery of dialogues is often made forceful with group singing, in which the entire troupe takes part.

15. Bhavai

The plays in the repertoire of Bhavai are like skits abounding in elements of prose and couplets. The poetic forms commonly used in Bhavai, are *Doha* and *Chaupai* including songs. Inextricable part of this theatre form is the lead actor's style of acting, his way of singing, and comments at regular intervals, during the performance itself. Bhavai has remained true to the folk traditions when it comes to the entry and introduction of the characters, the development of the theme, dramatic interludes and song sequences. Some of the plays associated with this theatre form are *Jasma Odan, Ramdev* and *Jaising*.

A *pagree*, loose pyjamas, shirt, etc are generally used as costumes. Traditional make-up material such as *gulal, haldi, geru, kumkum, shankh jiru, gond, chandan*, rice paste are used.

Also depending on the roles being played the beard, moustaches and long hair form a part of the wardrobe.

16. Jatra

Jatra is one of the most popular traditional theatre forms of Bengal and Orissa. It is believed to have come into existence about a thousand years ago. Jatra performance begins with musical presentations. It is important for the performing artists to have a sweet voice. The play is enacted along with group singing accompanied by mridanga players. The performances are staged on a high platform. The singers come to the stage wearing a loose dress known as *choga*. The compositions of *gaurchandrika* are sung in Jatra quite similar to recitation of *Nandi paath* in drama of Pauranic tradition. *Naldamyanti Jatra* and *Vidyasundar Jatra* are some of the popular Jatra presentations. Gods and Goddesses are revered by the devotees through their performances for which they travel extensively, hence the name 'Jatra'. Over the centuries, it was influenced by the Krishna cult. Gradually, faith and religious fervour has been replaced in this folk theatre form with contemporary themes of social and historical significance.

This dance form has also been referred to as *Jatra gaan*, because apart from dialogue and soliloquy, this form also includes '*kavigaan*' the recitation of poetry. Apart from this, Jatra consists of *Panchaali* (poetry), *Kathkata* (commentary) *Tappa* (light, North Indian music) *Keertan* (devotional songs to the accompaniment of *Khol* and *Kartaal*). The main singer sits behind the choir (*Juri*), plays the violin and gives directions when required.

India's poet laureate, Ravindranath Tagore produced two plays based on the form of technique of Jatra namely *Valmeeki Pratibha* and *Mayar Khela*.

17. Jatra

As a general convention, Jatra has only male actors. The female roles are also enacted by male artists. The actors specializing in female roles, used to add the term 'Rani' as a prefix to their names, so as to distinguish themselves from the rest of the actors.

The costume, make up and jewellery associated with this form, have the stamp of the different cultural phases and influences. The costumes do not necessarily conform to real life.

Earlier, natural colouring agents, materials, etc., were used, like *kajal*, white lead and red powder. Now, modern techniques and appliances are used. These include, the eyebrow pencil, lipstick and so on. The artists wear traditional costumes. The preferred colours continue to be red, yellow, pink and blue. Down the ages, the villains of Jatra have worn only leather costumes. The practice continues.

18. Jatra

Jatra is a play more than dance-drama or opera. Naturally, the form has changed with the times. Jatra has also turned commercial, in the sense, that it has to compete with other forms of entertainment. Today, the Jatra does not have the Sutradhar or the narrator to keep the different scenes and themes within the framework.

It was in the beginning of the twentieth century, that Mathur Shah introduced the character, Vivek in Jatra. This character, a combination of the clown and the narrator, moves the play forward, gives warning of the calamities to come and makes the villain aware of his misdeeds. Because Jatra depicts life in all its dimensions, its ups and downs, and is based on contemporary themes, this form has attracted an audience from all classes engaged in diverse occupations.

Jatra music is usually based on the *ragas Shyam Kalyan, Behag* and *Purvi*. The music is scene-bound, so to say. War scenes, long dialogues, love and affection, denoument, etc. are invariably portrayed with music. The musical instruments used, are *tabla*, drum, *shehnai*, clarinet, violin, *kartaal*, flute and guitar.

19. Maach

Maach is an extremely popular theatre form of the Malwa region of Madhya Pradesh. It bears resemblance to Khyal of Rajasthan and Nautanki of Uttar Pradesh in music but differs textually and metrically. Maach is identified by its typical style of prose and poetry. Guru Balmukund ji of Ujjain is known as the progenitor of Maach. He composed sixteen plays in which he also played the lead role. The copies of these plays is still in the custody of his close relatives.

Maach, meaning arena, is derived from *Manch*, a raised platform, which is usually built in an open space. One week before the performance starts, a pole for the performance of Maach is fixed in the ground. The artists get together around that place and their Guru performs the religious rites. The stage is built on the poles, 5' to 10' high from the ground and on the stage a curtain is put on its rear side decorated with colourful flowers made of paper. There is no green room in the Maach theatre. The artists change their clothes near the place adjoining to the stage. The audience sits on the three sides of the stage as the Maach is performed from all these sides.

Initially the poles used to be erected on all sides of stage (Manch) which was covered by a canopy, nowadays there is a curtain fixed on the rear like in any other performance.

20. Maach

In the Maach theatre form, the setting of stage occupies an important place. Elaborate arrangement of set is done with two tall structures representing palaces with a lower platform in between. A big pitcher on one side and a prisoner-post on the other can be seen. To seat the king, the guards and about 16 others, there is a projected balcony. There is a place to sit only for the king. All this was to create an imposing atmosphere for the play. Apart from mythological stories and Pauranic characters – which have universal appeal, heroic play intertwined with the drama based on theme of social orthodoxy and historical events are also performed and appreciated.

Three main characters are present in all the performances of Maach theatre. They are *Choubdar* (the mace-bearer) who acts like Sutradhar, *Bhishti* (who carries a large leather bag to sprinkle water before the performance) and *Farash* (who rolls the carpet on the stage). In addition, there is a clown. The Maach actor is not a glorious figure. The performers in the Maach theatre are modest, humble and are familiar to the audience.

21. Maach

Dholak is the primary musical instrument used in the Maach theatre form. The *sarangi* and *dholak* with the accompaniment of *nagara* are played during the performance. To keep the tempo of the plays upbeat the rhythm is a very important component particularly in verses and songs. Dance too has an important role in Maach.

Make up is usually loud with costumes comprising shining clothes with pattern and lot of brocade work. As contemporary issues are adopted in Maach theatre nowadays, make-up and costumes are taken from daily life.

22. Ankia-Naat and Bhaona

One of the traditional theatre-forms of Assam is Ankia Naat. The performance itself is known as Bhaona. The original term is *'Bhaoloa'*, which means the expression of emotions through mime and gesture. In Assam, this traditional form was born and developed in the monastries, and continues to thrive there. It is believed, that it was Shankar Dev who popularized this form of dance-drama. Apart from the basic Assamese character, there are also traces of traditions of Bengal and Orissa, as also of Mathura and Brindavan. The language used in Bhaona is called *Brajboli*. It is a linguistic union of many sources. It is possible, that this multi-based linguistic structure makes the form popular, with local changes and adaptations, in Bengal, Bihar and Orissa.

As *Bhaona* has been inspired by Vaishnavism, down the centuries, it has portrayed the pranks of Krishna and the deeds of the characters of the epic Ramayana. The festival of the birth of Krishna, *Janmashtami, Nandotsav, Dolyatra, Raaspoornima*, are occasions which can hardly be imagined without the performance of Bhaona. Gradually, this theatre form became so popular that its performances were no longer confined to just religious occasions. The farmers, for instance, after harvest, used to get the artists over, for a performance. Ankia Naat is a rare combination of classical Sanskrit and traditional Assamese theatre forms. The Sutradhar or narrator in Ankia Naat begins the play with a commentary in Sanskrit, and later on switches to Brajboli or Assamese.

23. Ankia-Naat and Bhaona

The performance of Ankia Naat is presented in the monasteries in *Bhaona Ghar*. It is roughly ninety meters long and fifteen meters broad. As there are no walls surrounding this area, the audience can be huge and everyone can watch the play either seated or standing.

In this rectangular pavilion, the *Thaapana* or throne is placed on one end. The musicians have their reserved place at the other end of the pavilion. The singers are known as *Gaayan-Baayan*. The musicians, accompanying the singers play to *mridang, rehri-gomukh*, the large *jhanjh* or *manjeera*. A little distance from the pavilion is the *Chattar*, which is the room where the actors apply make up, and dress up for the show.

The pavilion where Bhaona is traditionally staged, is made of bamboo stumps tied together, to form the pillars covered on the top by iron sheets and matted straw.

Like most folk theatre forms, Bhaona also begins with the introductory *Poorvarang* also called *Dhemaal* in Assam. It is after this, that the Sutradhar comes in, dancing, giving the introduction of the play, the characters, the episodes. These traditions are all based on the classical Sanskrit theatre traditions. When the main character makes his entry, *pravesh geet*, or the song of entry, is inevitably sung.

It is after this, that a white sheet is stretched, indicating the conclusion of the introduction. It is also the signal given to the other characters to make an entry, introduce themselves, all in strict adherence to the rules of Bhaona.

24. Ankia-Naat and Bhaona

In this traditional dance-drama, there are pure dance sequences as also sequences emphasizing the element of acting and mime. The plays with a long duration are called *Naat*, and those with a short time-span, *Jhumura*. The poet who has composed the largest number of *Jhumura*, is Madhav Dev. Normally, this dance form is only presented during the day, till sunset. After sunset, the *Naat*, is presented, often throughout the night. The performance ends in the early morning, with ritualistic *Muktimangal*. At times Bhaona is performed with the active support of people of many villages, lasting quite a few days and nights. These presentations are called *Bara Khelia Bhaona*.

As a general convention, the role of women in Bhaona is presented by men. Their costumes and make-up are essentially feminine and in good taste. They wear saree or mekhala and also wigs. Some of the characters wear masks, making their identity absolutely clear. These masks are made of bamboo or terracota. They are painted with red, yellow, blue and black colour, according to the role played.

In Assamese literature Ankia plays have been given a prominent place. Like other classical theatre forms, it has its own identity. Ankia is not divided into scenes, incidents, intervals, etc. It is a continuous narration and depiction of dance, song and sequences which are systematically presented. This coherence is also brought about by the use of prose, in both dialogue and narration.